विद्यापति ठाकुर, मैथिली के महानतम कवि, ईस्वी सन १३५० से १४६० तक जीवित रहे। उन्होंने मैथिली भाषा मे लिखा, जो पश्चिम बंगाल की सीमा से लगने वाले बिहार के पूर्वी-क्षेत्र के लगभग पाँच लाख निवासियों के द्वारा बोली जाती है। विद्यापति अपने उन ८०० वैष्णव और शैव पदो के लिये सुविख्यात हैं जिन्हें विभिन्न ताड़-पत्र पांडुलिपियों मे से बचा लिया गया है। वे संस्कृत, अवहत्थ (अपभ्रंश) और मैथिली के विद्वान् थे। उनके गीत नारी की सुंदरता और शालीनता के सुरेख लघु-चित्र-सम वर्णनों से परिपूर्ण हैं। रवीद्रनाथ ठाकुर ने कहा था, "विद्यापति आनंद के कवि थे और प्रेम ही उनके लिये संसार का सार था।" उन्होने अपने गीतों को संगीत पर भी ढाला था, क्योंकि वे २६ वर्षो तक शिवसिंह के राज्य में राजकवि थे। अपने निनादक गीतों के अतिरिक्त विद्यापति ने **पुरुषपरीक्षा, कीर्तिलता, गोरक्षप्रकाश** जैसे ग्रंथों की भी रचना की।

महान् मैथिली-कवि पर यह पुस्तिका स्वर्गीय पंडित रमानाथ झा के द्वारा लिखी गई है, जो मैथिली के सुप्रसिद्ध विद्वान् और समालोचक थे। वे साहित्य अकादेमी के मैथिली परामर्शमंडल के संयोजक और कार्यकारी मंडल के सदस्य भी थे। यद्यपि उन्होंने इस पांडुलिपि को सम्मार्जित करने की इच्छा व्यक्त की थी, दुर्भाग्यवश दिसंबर, १९७१ को उनका दु:खद असामयिक निधन हो जाने के कारण वे ऐसा नहीं कर सके। भावभीनी श्रद्धांजलि के रूप मे पुस्तिका का मूलपाठ वैसा ही प्रकाशित किया जा रहा है जैसा कि उन्होंने छोड़ा था।

रु० २.५०

आवरण सज्जा : सत्यजित् राय
रेखाचित्र : कांति राय

डॉ० [illegible] अवस्थी डी०लिट्०

पूर्व प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

८/४ बैंक रोड, इलाहाबाद-२११००२

। साहित्य के निर्माता

ाद्यापति

लेखक :

मोनाथ झा

अनुवादक :

न्द्रकुमार वर्मा

कादेमी, नई दिल्ली

Vidyapati . Hindi Translation by *Mahendra Kumar Varma* of Ramanath Jha's English monograph. Sahitya Akademi, New Delhi (1980). Price Rs. 2.50.

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे

प्रथम संस्करण : १९८०

साहित्य अकादेमी
रवींद्र भवन, ३५, फीरोजशाह रोड, नई दिल्ली-११०००१

क्षेत्रीय कार्यालय
रवींद्र सरोवर स्टेडियम, ब्लाक ५ बी, कलकत्ता-७०००२९

१७२, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-४०००१४

२९, एलडाम्स रोड, (दूसरा तल्ला) तेनम्पेठ, मद्रास-६०००१८

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, ४/११५, विश्वासनगर, शाहदरा,
दिल्ली ११००३२

विद्यापति

विद्यापति भारतीय साहित्य के एक अत्युत्कृष्ट निर्माता थे। जिस समय संस्कृत समस्त आर्यावर्त की सांस्कृतिक भाषा थी, उस समय उन्होंने अपनी क्षेत्रीय बोली को अपने मधुर और मोहक काव्य का माध्यम बनाया एवं साहित्यिक भाषा के अनुरूप उसमें अभिव्यक्तीकरण का सामर्थ्य भर दिया। उन्होंने दूसरों के द्वारा अनुकरणीय एक नये प्रकार के काव्य की परंपरा चलाई और आर्यावर्त के इस हिस्से में ऐसा कोई साहित्य नहीं है, जो उनकी प्रतिभा व रचना-कौशल के प्रभाव के प्रति अत्यधिक ऋणी नहीं है। उन्हें मैथिल-कोकिल ठीक ही कहा गया है, क्योंकि उनके मधुर कूजन ने आधुनिक पूर्वोत्तर भारतीय भाषाओं के काव्य में यथार्थत: वसंत का आगमन करवाया।

२

विद्यापति का जन्म मिथिला के हृदय-देश (दरभंगा जिले के मधुबनी उप-मंडल) के बिसफी नामक गाँव में १३५० ई० के लगभग उन विद्वान्-राजपुरुषों के परिवार में हुआ था जो पाँच पीढ़ियों से अधिक समय तक मैथिल-समाज के नेता बने रहे थे।

मिथिला की भूमि अतिशय प्राचीन काल से बौद्धिक धारणाओं और क्रिया-कलापों के लिए विख्यात रही है, किंतु राजनैतिक रूप से वह बुद्ध के समय से ही मगध के आधिपत्य में रही है। गुप्त-राजाओं के उपरांत, दिग्विजय करके अश्वमेध संपन्न करना ही जब राजत्व का उच्चतम आदर्श बन गया, भारत के प्रत्येक साहसी राजा ने गंगा के पार देश की उत्तरी सीमा बनाने वाले हिमालय तक पहुँचने के लिए मिथिला को आक्रांत किया। इस प्रकार, स्वयं का कोई राजा न रहने के कारण, मिथिला को कभी शांति नहीं मिली। यह एक अचरज ही है कि राजनैतिक उथल-पुथल के बावजूद मिथिला की भूमि ने अपना सांस्कृतिक अस्तित्व किस प्रकार अविच्छिन्न बनाए रखा? किंतु वह मैथिल-जीवन-पद्धति ही थी जिसने, लोगों के निर्बाध-रूप से जीवन बिताने के लिए मुक्त रहने तक, राज-

नैतिक परिवर्तनों को कोई महत्त्व नहीं दिया। फिर भी, मिथिला कलाओं को सरक्षकत्व प्रदान नही कर सकी और इस कारण उसके बेटो को बाहर जाना पडता था। इसलिए सन् १०९७ ई० में जब कर्णाट नन्यदेव धुर दक्षिण से मिथिला आया, तब उसका खुले दिल से स्वागत किया गया; विशेषतः इस कारण भी कि वह स्वयं एक साहित्य-कला-प्रेमी विद्वान् था। उसने अपना स्वयं का राज्य स्थापित किया और छह पीढ़ियो तक कर्णाट मिथिला पर राज्य करते रहे। उन्होंने प्रदेश की जनता के साथ पूरी तरह तादात्म्य स्थापित कर लिया और उनके हितैषी शासन के अंतर्गत मिथिला ने शांतिपूर्वक प्रगति की। अवशिष्ट आर्यावर्त मुसलमानों के शासन मे आ गया; किन्तु मिथिला पूर्ण राज्यकौशल के साथ अपना कारबार चलाती रही, मैथिल क्षत्रियों का निर्विघ्न शासन बने रहने के कारण। इससे प्रादेशिक जीवन में पुनर्जागरण का युग प्रारभ हुआ। लक्ष्मीधर ने अपनी विधिसहिता 'कल्पतरु' का सकलन किया और गंगेश ने दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में विख्यात तत्त्वचिंतामणि की रचना की; इन दोनों विद्वानो ने शताब्दियो तक के लिए संपूर्ण आर्यावर्त मे, व उसके बाहर भी, विद्वत्ता का एक नमूना स्थापित किया।

किंतु मैथिल समाज के नेताओं ने देखा कि वे अधिक समय तक मुसलमानो को मिथिला पर कब्जा करने से नहीं रोक सकते और उन्होने अपने सामाजिक जीवन का पुनर्गठन, सामाजिक दशा का सगठन तथा एक ऐसे एकता के बधन का निर्माण प्रारंभ किया, जो प्रदेश में रहने वाले विभिन्न वर्गो को एक राष्ट्र के रूप में बाँधकर रख सके। इसलिए जब शक संवत् १२४५ (सन् ई० १३२३) मे निर्भीक युवा राजा हरिसिंह देव के शासन में मिथिला गयासुद्दीन तुगलक के आक्रमण के सामने परास्त हो गयी, तब उत्तर भारत का अंतिम क्षत्रिय शासन समाप्त हो गया; किंतु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि मिथिला को मुस्लिम सूबेदार के प्रत्यक्ष शासन में रखना न तो लाभप्रद था और न ही संभव। फल-स्वरूप फीरोजशाह तुगलक ने तिरहुत का राज्य राजपडित कामेश्वर ठाकुर के अधीन कर दिया जिन्हें, व जिनके वंशजों को, विद्यापति के कुल-सदस्य पूरी तरह अवलब देते रहे। वे शुक्ल-यजुर्वेद के काश्यप गोत्र के अत्यत सम्मानित ब्राह्मण-परिवार में से थे, जिसका मूल मुजफ्फरपुर जिले में पूसा के निकट अभी भी प्रगतिमान् समृद्ध गाँव ओइनी में था। कर्णाटों के पतन के केवल २७ वर्षों बाद और मिथिला में ओइन राज्य की स्थापना के प्रायः एक दशक के भीतर ही विद्यापति का जन्म हुआ।

कर्णाटों ने मिथिला में अपना राज्य तब स्थापित किया, जब नव हिंदुत्व मे बौद्ध-मत को समाहित करके वैदिक और बौद्ध-मतों का संघर्ष शांत कर दिया गया था और जातियों का क्षेत्रीय विभाजन स्पष्ट हो गया था। नवीन सामाजिक

मूल्य मान्यता प्राप्त कर रहे थे और प्राचीन व्यवस्था नवीन को स्थान दे रही थी। प्राचीन विधियों को नवीन परिभाषाएं प्रदान करके तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जा रहा था। दूसरी ओर, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम की ओर से मुसलमान धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे और संपूर्ण आर्यावर्त इस्लामी दुस्साहन के आक्रमण के खतरे में था जिसके आगे एक के बाद एक राज्य झुकते जा रहे थे; परिणामस्वरूप, कर्णाटों के प्रतिष्ठित होने के तुरंत बाद, संपूर्ण आर्यावर्त मुसलमानों के मतवाले निर्दय हाथों के नीचे आ गया। प्रबुद्ध और हितैषी कर्णाटों के अंतर्गत मैथिल समाज के नेताओं ने मुसलमानों को दूर रखने के हर उपाय किए और अपनी सामाजिक रचना को संघटित करने में लग गए। समस्त समाज के व्यवहार और प्रत्येक जाति या वर्ग के व्यक्तिगत अनुशासन को नियंत्रित करने के लिए एक नया ढाँचा नियोजित व उद्घोषित किया गया और यद्यपि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रभावी परिवर्तन किये गए थे, इन परिवर्तनों को पुराने नियमों की नयी परिभाषाएं बनाकर सामने लाया गया था, जिससे बाह्यरूपेण यह सारा कार्य एक विकासशील कदम लगता था, न कि एकदम क्रान्तिकारी। इस प्रकार अतीत के साथ सातत्य अविच्छिन्न रखा गया, यद्यपि कभी-कभी केवल नाम के लिए ही।

विद्यापति, जिनका आनुवंशिक उपनाम 'ठाकुर' यह बतलाता था कि वे अचल संपत्ति के स्वामी थे, शुक्ल-यजुर्वेद की माध्यंदिन शाखा के काश्यप-गोत्रीय मैथिल ब्राह्मण-परिवार में जन्मे थे। दरभंगा से करीब १६ मील उत्तर-पश्चिम में अभी भी समृद्ध गाँव बिसफी में इस परिवार का मूल था; और विद्यापति के जन्म के समय यह परिवार उसी गाँव में रहता था जिस कारण यह बिसाईवर बिसफी के नाम से जाना जाता है। यह विद्वान्-राजपुरुषों का परिवार था जो मिथिला में अपने शास्त्रीय ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे और कर्णाट राजाओं के दरबार में विश्वस्त उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। विद्यापति से छठे पूर्वज कर्मादित्य थे, जो संभवत: दरबार में मंत्री के रूप में प्रविष्ट हुए थे तथा उनके पुत्र देवादित्य, पौत्र वीरेश्वर और प्रपौत्र चंडेश्वर भी संधि-विग्रह-मंत्री के पद पर रहे। देवादित्य का दूसरा बेटा गणेश्वर भी मंत्री था और महासामंताधिपति सामंतों की समिति की अध्यक्षता करता था एवं महाराजाधिराज की उच्च पदवी धारण करने वाला सामंतप्रमुख था। विद्यापति ने अपनी कृति 'पुरुषपरीक्षा' में वीरेश्वर और गणेश्वर दोनों की कहानियां बतलायी हैं और बतलाया है कि किस प्रकार गणेश्वर अपने ज्ञान के लिए सारे भारत में विख्यात था। देवादित्य का भाई भवादित्य एक सभासद् था और वीरेश्वर के सगे व सौतेले भाई भी ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन थे, जैसे कोषाध्यक्ष, अंतरण-विभागाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष इत्यादि। वीरेश्वर ने छांदोग्य, सामवेद के अनुयायियों के

लिए एक पद्धति की रचना की थी एवं तीसरे भाई गणेश्वर के पुत्र रमादत्त ने वाजसनेयि, शुक्ल-यजुर्वेद, के अनुयायियों के लिए एक पद्धति लिखी और मिथिला मे आज तक इन पद्धतियों के अनुसार विधिविधान किये जाते हैं। गणेश्वर अनेक स्मृति-ग्रंथों का लेखक है, जिनमे से एक सुगति-सोपान है, जिसके अनुसार आज तक मिथिला में एक बड़े ब्राह्मण-वर्ग के श्राद्ध-संस्कार किए जाते हैं। फिर भी वीरेश्वर के पुत्र चण्डेश्वर की विद्वत्ता सबसे बढ़-चढ़कर थी। वह धर्म या स्मृति संहिता सप्तखंडीय 'रत्नाकर' का लेखक है। इसमे विधि और संस्कारों का विधान है और यह पिछली छह शताब्दियों से मिथिला के लोगों के लिए अधिकृत ग्रंथ रहा है। इन सात रत्नाकरों के अलावा चंडेश्वर ने ओइनबरों को समर्थन देने के लिए राजनीति रत्नाकर की भी रचना की क्योंकि इन्हें पहले-पहल मिथिला के लोगों ने अपनाया नहीं था, जिसका कारण यह था कि वे दिल्ली-पतियों के स्वामी-भक्त थे और ब्राह्मण होने के कारण उनका राज्याभिषेक नहीं हो सकता था। इन और दूसरे मुद्दों पर चंडेश्वर ने परिवर्तित परिस्थितियों में नये और वास्तविक तथ्यों को आश्चर्यजनक रूप से समझते हुए अपने विचार व्यक्त किए और इस प्रकार एक नए समाज की स्थापना की, जो युग-युगों के उत्थानपतन के बावजूद आज तक अस्तित्व में है। और चंडेश्वर उन विद्वान्-राजपुरुषों के दल में से एक था, संभवतः सर्वाधिक सम्मानित, जिन्होंने पुनरुत्थान के इस काल में जन-जीवन को ढाला था। इस पुनरुत्थान काल की एक दुर्लभ प्रतिभा विद्यापति थे जो शाश्वत-प्रेम के गायक के रूप में अमर है, किंतु साथ ही एक पुरुष और राजपुरुष के समग्र व्यक्तित्व को धारण करने के कारण भी उनकी कुछ कम याद नहीं की जाती है।

३

जब विद्यापति का जन्म हुआ तब मिथिला में एक बड़े सामाजिक और बौद्धिक पुनरुत्थान का इस प्रकार का समय था और उस सांस्कृतिक पुनरुत्थान के नायकों का ऐसा परिवार था, जिसके वे एक योग्य अंकुर थे। ओइनवरों के नव स्थापित राजपरिवार से घनिष्ठ-रूप से संबंधित वे पूरे जीवन-भर ओइनवर-राजाओं के दरबार में प्रमुखरूप से रहे और ओइनबरों की चार पीढ़ियों के दौरान सात राजाओं की विशिष्ट सेवा की। वे अपने समय के सर्वाधिक प्रतिनिधि-लेखक थे और जो जीवन उन्होंने जिया और जो कार्य उन्होंने किए वे ओइनबर दरबार की घटनाओं के अनुरूप थे। तथापि मिथिला मे भी ओइनबरों का इतिहास सर्वविदित नहीं है। इसलिए यहाँ पर संक्षेप में मिथिला के ओइनबर-शासकों का इतिहास बतलाना सुविधाजनक होगा जिसके प्रकाश में विद्यापति के

जीवन और उनकी कृतियों को अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है।

सन् १३२५ ई० में हरिसिंह देव की पराजय के साथ ही मिथिला में कर्णाट-शासन का अंत हो जाने पर, यद्यपि कामेश्वर ठाकुर के हाथों में राज्य सौंप दिया गया फिर भी कुछ समय तक ओइनवारों को वास्तविक राजा नहीं माना गया। कामेश्वर का सबसे बड़ा बेटा भोगीश्वर उसका उत्तराधिकारी बना किन्तु उसके सबसे छोटे भाई भवसिंह ने उसका अधिकार नहीं माना और राज्य का विभाजन करवा दिया। फलस्वरूप इन दोनों शाखाओं में विरोध हो गया। भोगीश्वर स्वल्प-आयु था और उसका बेटा गणेश्वर उत्तराधिकारी बना, किन्तु लौ० सं० २५२ में भवसिंह की संतति के षड्यंत्र के फलस्वरूप धोखे से मारा गया। गणेश्वर के बेटे, वीरसिंह और कीर्तिसिंह भाग खड़े हुए और यहाँ-वहाँ भटकने के बाद आखिरकार अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए और अपना उचित अधिकार वापिस पाने के लिए उन्होंने जौनपुर के इब्राहीम शाह को मना लिया। इसी बीच भवसिंह ने सारे राज्य पर अधिकार कर लिया और वृद्ध चंडेश्वर का समर्थन प्राप्त करते हुए अपने को तिरहुत-राजा के रूप में सर्वमान्य करवा लिया तथा राजत्व के प्रतीक के रूप में सिंह की उपाधि-धारण की। मिथिला के पारंपरिक इतिहास में भवसिंह को ओइनवार वंश का सबसे पहला राजा माना जाता है।

भवसिंह का बेटा देवसिंह उसका उत्तराधिकारी बना किन्तु पारिवारिक कलह से उत्पन्न परिस्थितियों से वह इतना ऊब गया कि उसने अपने सोलह वर्ष के बेटे शिवसिंह को राज्य सौंप दिया और वानप्रस्थ जीवन बिताने के लिए सुदूर नैमिषारण्य, कानपुर के निकट आधुनिक नीमसार, चला गया। शिवसिंह ने अपने को एक अत्यन्त उदात्त, शक्तिशाली और लोकप्रिय राजा सिद्ध कर दिया। वह स्वतंत्र हो गया और बंगाल तथा पटना के मुस्लिम नवाबों के साथ उसने बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ीं। लौ० सं० २५३ में देवसिंह की मृत्यु हो गयी और तभी शिवसिंह पूरी तरह राजा बन पाया, किन्तु वह केवल साढ़े तीन वर्षों तक ही राज्य कर सका। लौ० सं०२९६-२९७ की हेमंत-ऋतु में उसे संभवतः गणेश्वर की हत्या का बदला लेने के लिए कीर्तिसिंह के साथ तिरहुत पहुँचने वाले जौनपुर के इब्राहिम शाह से लड़ना पड़ा। इस युद्ध में शिवसिंह हार गया किन्तु उसे कहीं भी जिन्दा या मरा हुआ नहीं पाया गया। विजयी नवाब ने तिरहुत को ज्यों का त्यों छोड़ दिया। किन्तु राजा से यह शपथ ले ली कि वह दिल्ली के सुल्तान की बजाय जौनपुर के घराने के प्रति वफादार रहेगा। शिवसिंह की पत्नियाँ आधुनिक नेपाल में स्थित सप्तरी के मुखिया पुरादित्य के संरक्षण में रहने और लापता राजा का समाचार जानने हेतु बारह वर्षों तक प्रतीक्षा करने के लिए अपने-आप ही देश से बाहर चली गयीं, क्योंकि शास्त्रों के अनुसार इस अवधि के उपरांत ही उसके अन्तिम

संस्कार किए जाने थे। इसी बीच शिवसिंह का छोटा भाई पद्मसिंह तिरहुत पर राज्य करता रहा और उसकी मृत्यु के उपरांत उसकी पत्नी विश्वास देवी ने राज्य किया। जब लौ०सं० ३०६ में शिवसिंह के अंतिम संस्कार किये गए और उसकी पत्नी सती हो गयी, तब राजा के निकटस्थ पुरुष उत्तराधिकारी को राज्य मिला और इस प्रकार राज्य पाने वाला था वृद्ध हरिसिंह जो भवसिंह का दूसरी पत्नी से उत्पन्न छोटा बेटा था। उसके बाद उसका बेटा नरसिंह राजा बना किन्तु एक बार फिर से राज्य के लिए संघर्ष हुआ। नरसिंह के बाद उसका बडा लडका धीरसिंह राजा बना किन्तु उसके बाद राज्य उसके बेटे को नहीं बल्कि उसके छोटे भाई भैरवसिंह को मिला। विद्यापति की मृत्यु लौ०सं० ३३० में हुई, शिवसिंह के लापता होने के ३२ वर्ष बाद, जबकि धीरसिंह तिरहुत का राजा था।

हम यह ठीक-ठीक नहीं जानते कि विद्यापति का जन्म कब हुआ था किन्तु कहा जाता है कि वे शिवसिंह से २ वर्ष बड़े थे। शिवसिंह अपने पिता की मृत्यु के समय ५० वर्ष का था और इस तरह वह गुरुवार चैत्र कृष्ण षष्ठी को पूरी तरह राजा बना, लौ०सं० २९३ अर्थात् शक संवत् १३२४ अर्थात् ईस्वी सन् १४०२ में। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्यापति का जन्म ईस्वी सन् १३५० के लगभग हुआ था, कर्णाटवंश के पतन के प्राय: २७ वर्षों बाद और ज्योतिरीश्वर ठाकुर के द्वारा 'वर्णरत्नाकर' की रचना किए जाने के २५ वर्षों के भीतर। इसलिए जब गणेश्वर की हत्या की गयी और भवसिंह का पूरे तिरहुत राज्य पर अधिकार हुआ, तब विद्यापति दस वर्ष के बालक थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति का जन्म उस समय हुआ था, जिस समय उनके पितामह के चचेरे भाई चंडेश्वर जीवित थे।

विद्यापति उन धीरेश्वर के प्रपौत्र थे, जो महा-वार्तिक नैबंधिक के रूप में जाने जाते हैं, यद्यपि उनके कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। धीरेश्वर चण्डेश्वर के पिता वीरेश्वर के और उन गणेश्वर के भाई थे, जो अन्तिम कर्णाट राजा के सर्वविदित बुद्धिमान् मंत्री थे। पुरुष-परीक्षा में वीरेश्वर और गणेश्वर दोनों के विषय में किंवदंतियाँ दी गयी हैं। धीरेश्वर का बेटा जयदत्त था और उसका बेटा गणपति था। गणपति हमारे कवि के पिता थे।

नामों की समानता के कारण कुछ लोगों ने यह समझा कि वर्णरत्नाकर के लेखक कविशेखर ज्योतिरीश्वर, जिनके पिता का नाम धीरेश्वर था, जयदत्त के भाई थे, जिनके पौत्र विद्यापति थे। किन्तु यह भूल है, क्योंकि ज्योतिरीश्वर के पिता धीरेश्वर तो रामेश्वर के बेटे थे, जबकि विद्यापति के प्रपितामह धीरेश्वर देवादित्य के बेटे थे; इसलिए भी क्योंकि ज्योतिरीश्वर वत्स-गोत्र के थे और विद्यापति काश्यप-गोत्र के। इसी प्रकार विद्यापति के पिता गणपति को 'गंगा-भक्ति-तरंगिणी' का लेखक गणपति माना गया है किन्तु यह भी भूल है विद्यापति के

पिता गणपति जयदत्त के बेटे थे, जबकि गंगा-भक्ति-तरंगिणी का लेखक अपने को धीरेश्वर का पुत्र कहता है। विद्यापति यह नाम भी मिथिला में बहुत सामान्य रहा है और ऐसे अनेकों विद्यापति हुए हैं, कुछ का तो उपनाम भी ठाकुर है, जिन्होंने हमें उपलब्ध अनेकों कृतियाँ लिखी हैं। इसलिए विद्यापति संबंधी किसी भी अध्ययन में केवल विद्यापति नाम से ही तन्नामधारी महान् कवि नहीं समझ लेना चाहिए, जब तक कि हमें अकाट्य प्रमाण नहीं मिल जावे। इसमें बहुत ज्यादा खतरा है और यदि ध्यान नहीं दिया गया तो फलस्वरूप उतने ही मूर्खता-पूर्ण तादात्म्य सिद्ध होंगे जितने कि गंगाभक्ति-तरंगिणी के लेखक से उनके पिता का तादात्म्य अथवा वर्णरत्नाकर के लेखक से उनके पितामह के भाई का तादात्म्य।

विद्यापति का जन्म बिसफी नामक गाँव में हुआ था जो कि उनके परिवार की याददाश्त के अनुसार उनके पूर्वजों का घर था; फलस्वरूप समाज के नवीन गठन में बिसफी को इस परिवार का मूल-ग्राम मान लिया गया है और इस कारण ये लोग बिसाईवर कहलाये। विद्यापति जीवनभर बिसफी में रहे और जब शिवसिंह गद्दी पर बैठे तब राजा ने राज्य के प्रति महत्त्वपूर्ण सेवाओं के लिए कवि को यही गाँव बिसफी दान में दे दिया। इस मुफ्त दान का उपभोग करते हुए विद्यापति के वंशज बिसफी में ही उस समय तक रहे, जबकि ३०० वर्ष पहले वे मधुबनी के पास के गाँव सौराठ को चले गये, जहाँ वे अभी भी विद्यमान हैं। अंग्रेजों के आने तक यह गाँव इस परिवार के कब्जे में रहा।

बिसफी गाँव को गढ कहा गया है, जो कि इस तथ्य की निश्चित सूचना देता है कि अनेक पीढ़ियों तक राजपुरुषों के प्रभावशील परिवारों का गढ़ होने के कारण, यह गाँव राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण था और चूँकि ये सभी राजपुरुष उच्च कोटि के विद्वान् भी थे, यह गांव इस प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन में सर्वप्रमुख था। परिवार का उपनाम ठाकुर भी इसी तथ्य की ओर इंगित करता है क्योंकि ठाकुर से अचल सम्पत्ति का स्वामित्व अभि-व्यंजित है और यह बात तब और अधिक स्पष्ट हो जाती है, जब हम यह याद करते हैं कि इस परिवार का कम से कम एक सदस्य गणेश्वर पूरे समय महा-सामंताधिपति के रूप में सुविज्ञात था।

तिरहुत राजाओं के दरबार से घनिष्ठरूप से संबंधित परिवार में जन्म लेने के कारण विद्यापति को नव-स्थापित राजकुल के भीतर सहज प्रवेश मिल गया होगा और बालक के रूप में वे समान उम्र वाले कई राजकुमारों जैसे कीर्तिसिंह, शिवसिंह, पद्मसिंह और हरसिंह के साथ खेले-कूदे होंगे, जिन्होंने इस प्रदेश पर ओइनबर शासन की पहली सदी के दौरान तिरहुत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ अदा की थीं। किन्तु सभी राजकुमारों में शिवसिंह की ओर

विद्यापति अधिक झुके और वे शिवसिंह के सच्चे मित्र, प्रामाणिक परामर्शदाता, स्थायी साथी और विश्वसनीय अधिकारी बन गए। उनका यह साहचर्य इस युग के इतिहास का, विशेषरूप से इस प्रदेश के साहित्यिक इतिहास का एक अनन्य वैशिष्ट्य रहा है, क्योंकि शिवसिंह के उदार संरक्षण और प्रेरणामयी प्रशंसा के अधीन ही विद्यापति की प्रतिभा पूरी तरह प्रफुल्ल हुई।

विद्यार्थी के रूप में विद्यापति ने क्या-क्या और कितना पढ़ा, इसकी हमे कोई जानकारी नही है। पारंपरिक रूप से ऐसा जाना जाता है कि उन्होंने कुछ समय तक सुविख्यात अध्यापक हरिमिश्र से पढ़ा, जो कि उस समय के प्रसिद्ध नैयायिक, पक्षधर नाम से सुविज्ञात, जयदेव मिश्र के चाचा और शिक्षक थे, जिन्होंने गंगेश के तत्त्वचिंतामणि के अपनी प्रसिद्ध भाष्य आलोक में अपने चाचा गुरु का नाम अमर कर दिया। किन्तु ऐसा लगता है कि विद्यापति ने किसी गुरु के अधीन शिक्षा पाने में अधिक समय नहीं बिताया, क्योंकि हम उन्हें नैमिषारण्य मे देवसिंह के अनुचरो के बीच पाते हैं, जो लगभग १३६८ ईस्वी सन् मे अपने तरुण पुत्र शिवसिंह को राज्य चलाने का काम देकर वानप्रस्थी हो गये थे। नैमिषारण्य मे ही विद्यापति ने अपनी पहली प्रामाणिक कृति 'भूपरिक्रमा' लिखी जो कि पौराणिक ढंग से संस्कृत में लिखी गयी गद्य-पद्यमयी रचना है, जिसमे नैमिषारण्य से तिरहुत तक के मार्ग का वर्णन है और बीच में गुथी हुई है प्रस्तावना सहित आठ कहानियां जो पुरुषपरीक्षा में भी ज्यों की त्यों मिलती है। भूपरिक्रमा के प्रारम्भ में पैंसठ देशों का वर्णन करने और पैंसठ कहानियां बतलाने की प्रतिज्ञा की गयी है किन्तु यह ग्रन्थ पहले अध्याय से आगे नहीं बढ़ सका, जिसमें केवल आठ देशों का वर्णन है और केवल आठ कहानियाँ है। चूंकि ये कहानियाँ पश्चात्वर्ती पुरुषपरीक्षा में ठीक इसी प्रकार बतलायी गयी है, पौराणिक ढाँचे तथा नैमिषारण्य और तिरहुत के बीच के देशों के भूगोल के बिना; इसलिए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भूपरिक्रमा की योजना छोड़ दी गयी थी, क्योंकि विद्यापति को देशों का वर्णन करने के लिए और अधिक यात्रा करने का अवसर नहीं मिला अथवा अपनी योजना को पूरा करने के लिए वे अधिक समय नैमिषारण्य में नहीं रह सके। शीघ्र ही उन्हे शिवसिंह के दरबार में बुला लिया गया और तरुण राजकुमार के विश्वसनीय दरबारी के रूप में वे तत्कालीन राजनीति में कूद पड़े।

किन्तु विद्यापति ने गुरु के अधीन जो सीखा, वह उनकी शिक्षा का एक छोटा-सा भाग था। संपूर्ण मिथिला में वह एक गहन विद्वत्ता का युग था और आर्यावर्त के सभी हिस्सों से लोग यहाँ संस्कृत विद्या की विभिन्न शाखाओं में विशिष्ट शिक्षण पाने के लिए आते थे। विद्यापति के समान सर्जनशील कलाकार का मस्तिष्क एक विशिष्ट प्रणाली की संकीर्ण धारा में बँधकर नहीं रह सकता था।

तीक्ष्णबुद्धि और ग्रहणशील मस्तिष्क के द्वारा उन्होंने साहित्यिक संसार की अपेक्षा अपने चारों ओर के संसार से ज्यादा बातें सीखीं। उनका घर विद्या की ज्योति का केन्द्र था और सारे देश के विद्वान् वहाँ शास्त्र या धर्म, राजनीति या सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करने के लिए एकत्र होते थे तथा ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति अपने घर की हवा में विद्याभरी साँसें लिया करते थे। वस्तुतः उस विद्या-प्रदीप्त वातावरण में वे ऐसी बहुत-सी बातें अनायास ही सीख गए, जो कि दूसरे लोग विशिष्ट गुरु के अधीन परिश्रम-पूर्वक सीखने की आशा रखते थे। साथ ही उनका मस्तिष्क इतना तेज, गवेषणाशील और ग्रहणशक्ति युक्त था कि वह अधिक समय तक एक ही मुद्दे पर रुककर एकाग्र नहीं हो सकता था। उनकी रुचियाँ बहुत अधिक और सर्वव्यापिनी थीं; और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार था। जैसे ही उन्होंने शास्त्रविद्या को समझने के लायक शक्ति देने वाले शास्त्रों के मूलभूत सिद्धांतों का आवश्यक शिक्षण प्राप्त कर लिया वैसे ही उन्होंने नियमित विद्यार्थी-जीवन के संयमन को छोड़ दिया और अपने विख्यात परिवार के आनुवंशिक व्यवसाय को अंगीकार कर लिया तथा स्वदेश और स्वजनों की सेवा हेतु अपने को समर्पित कर दिया।

किन्तु उनका विद्याभ्यास उनके विद्यार्थी-जीवन के साथ ही समाप्त नहीं हो गया। पूरे जीवनभर वे एक पिपासु पाठक बने रहे और उनकी वृद्धावस्था की कृतियों के उद्धरणों से इस बात का प्रशंसायुक्त आश्चर्य करना पड़ता है कि उन्होंने महाभारत, रामायण, पुराण, आगम, तन्त्र, धर्मशास्त्र और निबन्धों का कितना सूक्ष्म अध्ययन किया था, उन श्रव्य और दृश्य काव्यों के अलावा जिनकी प्रतिध्वनि पद-पद पर उनके गीतों में गूँजती है। साथ ही शिवसिंह के दरबार में वे राजपंडित के पद पर भी आसीन थे और इस कारण दरबार में आने वाले सभी विद्वानों के साथ उनका घनिष्ठ सम्पर्क होता था। अपने तेज मस्तिष्क और मेधा-शक्ति के द्वारा वे पढ़े हुए को याद रखते थे और सुने हुए को अपने दिमाग में रख लेते थे और इनका जरूरत पड़ने पर लाभकारी उपयोग करते थे। इसलिए विद्यापति गहन विद्वत्ता की अपेक्षा विशाल पांडित्य से युक्त विद्वान् थे। उस युग में जबकि विशिष्ट ज्ञान ही विद्वत्ता की पहचान थी, विद्यापति किसी विशेष विद्या पर प्राप्त अधिकार की अपेक्षा विलक्षण उदार प्रतिभा से सम्पन्न थे।

और पढ़ने से भी अधिक लिखने का विद्यापति को शौक था। अपनी कीर्तिलता में विद्यापति कहते हैं, "कीर्तिरूपीलता तीनों लोकों में कैसे फैल सकती है, यदि अक्षरों रूपी डंडों से मंडप नहीं बनाया गया है।" उन्होंने देखा था कि उनके यशस्वी पूर्वज, राजपुरुष होने के नाते व्यस्त रहने पर भी, विख्यात लेखक थे और इसलिए किशोरावस्था से ही उनके मन में लेखक बनने की महत्वाकांक्षा जाग

उठी थी। चंडेश्वर के घराने की परम्परा का पूरी तरह निर्वाह करते हुए उन्होंने सस्कृत में लिखना प्रारम्भ किया, जिसपर उनका छोटी उम्र से ही अद्भुत अधिकार था; एवम् २० वर्ष की उम्र के पहले ही उन्होंने प्राचीन पौराणिक शैली मे एक महत्वाकांक्षायुक्त ग्रन्थ लिखने की योजना बनायी, जिसका नाम रखा 'भूपरिक्रमा' और जो भूगोल तथा विद्यापति के आदर्शपुरुष को व्यक्त करने वाली नीतिकथाओं का विचित्र सम्मिश्रण है। किन्तु ऐसा लगता है कि भू-परिक्रमा के पहले ही विद्यापति ने 'मणिमञ्जरी' नामक नाटक लिखने की कोशिश की, जो नाट्य-कौशल की दृष्टि से बहुत ही अपरिपक्व है किन्तु जिसमे अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचरितम् और रत्नावली की गूँज है और साथ ही जो नारीहृदय की कार्यप्रणाली का आश्चर्यजनक ज्ञान प्रदर्शित करता है जो विद्यापति के प्रेमकाव्य का निश्चित निदर्शक है। इस प्रकार अपनी युवावस्था से लेकर वे जीवन के अंतिम दिनों तक लिखते ही रहे। उनकी अंतिम कृति धीरसिंह को शासन करते हुए बतलाती है और उस समय वे ८० वर्ष मे अधिक उम्र के रहे होंगे। यदि हम उनके गीतों को छोड दें, जो एक हजार से भी ज्यादा होंगे, तो भी एक दर्जन ऐसी कृतियाँ हैं, जो लेखन के लिए समर्पित जीवन को प्रशंसा का पात्र बना देती है। किन्तु विद्यापति केवल एक लेखक नहीं थे, वे बहुविध रुचियों वाले व्यक्ति थे जो अपने जीवन के अधिकांश समय मे तत्कालीन राजनीति में व्यस्त रहे। इसलिए उन्होंने कीर्तिलता में कीर्तिरूपी लता के फैलने के लिए शब्दो के डंडों का मडप बनाने की जो बात कही थी वह उनकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा थी और उन्होंने कीर्ति के प्रति प्रेम के कारण ही लिखा था और उस कीर्ति को उन्होने अपने जीवनकाल में और मृत्यु के उपरान्त भी प्रचुर मात्रा से भी अधिक पाया।

विद्यापति ने ओइनबर दरबार में देवसिंह के समय या उससे भी पहले प्रवेश किया था और वे देवसिंह के साथ नैमिषारण्य गये, किन्तु ईस्वी सन् १३७० के लगभग, जब शिवसिह अपनी शक्ति बढ़ा रहा था तब विद्यापति को तिरहुत बुलाया गया। उस समय से शिवसिंह के अंतिम दिनों तक वे राजा के साथ निरन्तर बने रहे और एक प्रामाणिक मित्र व बुद्धिमान परामर्शदाता के रूप में अत्यधिक स्वामिभक्ति के साथ प्रमुख रूप से उसकी सेवा करते रहे। अधिकृत रूप से वे राजपंडित के पद पर नियुक्त थे और उनका कर्त्तव्य था पडितों का स्वागत करना, उनकी देखरेख करना, उनके पुरस्कार, दान का प्रबध करना इत्यादि ; किंतु वे वास्तव में राजा के घनिष्ठ मित्र, ईमानदार परामर्शदाता, अभिन्न सहचर और विश्वासपात्र अधिकारी थे। राजा का उन पर पूरा-पूरा विश्वास था और वे निश्चय ही राजा के आज्ञाकारी थे। ऐसा कहा जाता है कि एक बार जब राजस्व न देने के कारण शिवसिंह को कैद कर लिया गया तब ये विद्यापति ही थे जिन्होंने दीवान के छोटे बेटे अमृतकर के साथ अपनी

कविताओं के द्वारा नवाब को इतना अधिक खुश कर दिया कि राजा को न केवल छोड़ दिया गया बल्कि इस प्रकार के प्रमुख कवियों को संरक्षण देने के कारण अत्यधिक सम्मानित भी किया गया एवं विद्यापति को कविशेखर की पदवी से विभूषित किया गया। जब शिवसिंह गद्दी पर बैठा तब उसने विद्यापति को उनके मूलग्राम का दान देकर और अभिनवजयदेव की विशिष्ट पदवी प्रदान कर पुरस्कृत किया। जिस लड़ाई से वह कभी वापस नहीं लौटा, उस लड़ाई पर जाने के समय शिवसिंह ने अपनी छहों पत्नियों को विद्यापति को सौंप दिया और उनकी सुरक्षा करने को कहा। कवि पर राजा का इतना विश्वास था और इनके वे पूरी तरह से योग्य पात्र थे।

इस प्रकार विद्यापति शिवसिंह के दरबार में लगभग ३६ वर्षों तक रहे। मिथिला के इतिहास में इससे अधिक कीर्तिशाली, बलवान् और हितैषी, दृढ़ किंतु लोकप्रिय, राजा दूसरा कोई नहीं हुआ तथा मिथिला में एक कहावत अत्यधिक प्रचलित है—

पोखरी रजोखरी और सब पोखर,
राजा शिवै सिंह और सब छोकर।

कीर्तिपताका के अंतिम पद्य में विद्यापति कहते हैं कि प्रत्येक दिशा के प्रत्येक नगर के प्रत्येक घर की नारियाँ शिवसिंह की विजय के गीत गाती हैं। पुरुषपरीक्षा के अंतिम पद्य में विद्यापति लिखते हैं कि शिवसिंह गज्जन और गौड़, अर्थात् दिल्ली और बंगाल के अधिपतियों के साथ हुए युद्धों मे विजयी हुआ था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि प्रारंभिक वर्षों में शिवसिंह सीधे या बिहार के सूबेदार के जरिए दिल्ली के बादशाह को भेंट दिया करता था; वह धीरे-धीरे अपने अधिपति के अधिकार को अंगूठा दिखाने लगा, भेंट देना बंद कर दी, स्वाधीन हो गया और अपने सिक्के ढलवाने लगा। परिणामस्वरूप उसे कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, जिनमें वह सामान्यतः विजयी रहा। संभवतः इनमें से किसी एक विजय का ही विद्यापति ने अपनी कीर्तिपताका में यशोगान किया है। तथापि इन्हीं में से किसी एक युद्ध में शिवसिंह की जीवन-लीला समाप्त हो गयी, जिस प्रकार कर्णाटों में हरिसिंह भी अपने साहसी गुणों के कारण दिवंगत हुआ था। युद्ध, विशेषकर मुस्लिम आक्रांताओं के साथ, कभी भी मिथिला के राज-पुरुषों की नीति में नहीं रहा। वे इनके ज्वार को खुशामद की नीति से रोकने में सफल रहे थे। किंतु अपनी शक्ति और प्रचंडता के कारण कर्णाटों में हरिसिंह और ओइनबरों में शिवसिंह ने इनके साथ युद्ध करना चुना और दोनों को आक्रांताओं की अतिक्रामक सेनाओं के सामने गिरना पड़ा।

विद्यापति ने प्रायः प्रशंसा की सीमा छूने वाले प्रोज्ज्वल शब्दों मे विविधता-पूर्वक शिवसिंह का चरित्र-वर्णन किया है। पुरुषपरीक्षा के तीसरे के अंत

मे दो पद्य हैं, जिनमे शिवसिंह की तुलना भगवान् विष्णु और भगवान् शिव के साथ की गयी है. केवल रूप में ही नहीं बल्कि उनकी निजी विशेषताओं मे भी और विद्यापति कहते है, "दर्शन, शौर्य और ज्ञान इन तीनों का संयोग दुर्लभ है। सपूर्ण ब्रह्मांड मे तीन व्यक्ति ही इन्हें धारण करते है" दो देवता विष्णु और शिव तथा तीसरा मानव राजा शिवसिंह रूपनारायण। विदग्ध-कथा[1] में विद्यापति कहते है कि लोकविश्रुत राजा भोज के समान शिवसिंह भी कविता और कामिनी का सहृदय-प्रेमी था। उनके गीतों में यह भाव बार-बार आता है। उसे पृथ्वी का कामदेव,[2] सौंदर्य का सहृदय-प्रेमी,[3] राजाओं में कलाकार[4] तथा कला व साहित्य का उदार संरक्षक[5] कहा गया है। विद्यापति तो उसे विष्णु का ग्यारहवाँ अवतार[6] तथा कृष्ण के समान प्रेम का वितरक[7] तक कहते है। यह एक तथ्य है कि शिवसिंह ने कवि को वह सब कुछ दिया जिससे उनका जीवन सपन्न और सुखी बना ; किंतु कवि ने अपनी तरफ से अपनी कृतियों में, विशेषत: अपने गीतो मे, शताब्दियों तक सारे देश में उसे अमर बनाने के लिए सब कुछ किया। पुरुष-परीक्षा के तीसरे अध्याय की कथा सं० २६ में विद्यापति अत्यंत भावुकतापूर्वक कवि और उसके संरक्षक के संबंध का वर्णन करते हैं और कहते है कि कवि के शब्दों के द्वारा ही राजा का नाम युग-युगों तक याद किया जाता है।

१३७० से १४०६ तक (२० वर्ष की उम्र से लेकर ५६ की उम्र तक), दूसरे शब्दों मे अपने पौरुष के संपूर्ण काल में, विद्यापति शिवसिंह के साथ रहे और जीवन का पूर्ण उपभोग करते रहे। पुनर्जागरण की एक सच्ची प्रतिभा के समान, वे अपने दृष्टिकोण में अत्यंत प्रगतिशील थे, अपने समय से आगे देखते थे और अपने सिद्धांतों पर इस प्रकार चलने का पूर्ण विश्वासमय साहस रखते थे जिससे न केवल तत्कालीन, बल्कि सभी युगों के स्त्री-पुरुष प्रभावित होते। उन्हे शिवसिंह के समान राजा का पूर्ण विश्वास प्राप्त था और उसके उदार संरक्षकत्व मे वे जीवन के हर क्षेत्र में अपने सिद्धांतों का इस प्रकार अनुसरण करते रहे, जो साश्चर्य प्रशंसोत्पादक है।

---

१ पुरुषपरीक्षा, कथा सं० ३६।

२ गीत सं० ५०, २४५, ३४३, ५००, ६०८ ।

३. सं० २४०, ५०४।

४. सं० १२२, २४३, २६४, ३४३, ३६४।

५. सं० २०, २४५, ३३०।

६. सं० २५०, ७३७।

७ सं० ७५, २४०, ६००, ७६७। ये और बाद की सभी संख्याएँ 'विद्यापति की पदावली' (एन० गुप्त १९१० के [illegible] से हैं [illegible] तक कि [illegible] निर्देश न हो

४

इसी काल में विद्यापति ने अपने अधिकांश गीत लिखे, जिनके द्वारा वे अमर हो गये हैं, और साथ ही चार कृतियों की रचना की—अवहट्ठ में 'कीर्तिपताका' और 'कीर्तिलता', संस्कृत गद्य-पद्य में 'पुरुषपरीक्षा' और संस्कृत व प्राकृत में 'गोरक्षविजय' नामक एक नाटक जिसमें उन्होंने मैथिली गीतों का समावेश करके एक नवीनता प्रस्तुत की, जिस प्रकार कालिदास ने अपने 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश के नृत्यगीत रखे। यदि हम उनके पौरुषकाल की इन सब कृतियों का, उनके अधिकांश प्रेम-गीतों सहित, विश्लेषण करें, तो हम पायेंगे कि इन सबमें सर्वत्र एक दृष्टिकोण है और वह है "पुरुष के सभी लक्षणों सहित एक 'सच्चे पुरुष' की आदर्श-कल्पना, जो कि 'पुरुषाभास', पुच्छविहीन पशु, से बिल्कुल अलग-थलग है"[1]। विद्यापति कहते है, "पुरुष-रूपी प्राणी को पाना बिल्कुल सरल है, किंतु 'सच्चा पुरुष' दुर्लभ है"[2]। "पुरुष, पौरुष धारण करके ही पुरुष बनता है; केवल पुरुष-रूप में जन्म लेने से नहीं। हम मेघ को 'जलद' (पानी देने वाला) तभी कहते हैं जब वह जल की वर्षा करता है; अन्यथा वह धूम-राशि-मात्र है"[3]। उनके प्रेम-गीतों मे भी वनिताएं 'सच्चे पुरुष' से ही अनुराग करती हैं, जिन्हें विद्यापति 'सुपुरुष' कहते हैं।

विद्यापति 'सुपुरुष' के तीन लक्षण बताते हैं—वीरता अर्थात् विवेक और शक्ति से युक्त शौर्य; विशिष्ट कौशल सहित सुबुद्धि; तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने वाला ही 'सुपुरुष' होता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति पुरुष के समग्र व्यक्तित्व के संतुलित विकास में विश्वास रखते थे। 'पुनर्जागरण' की सच्ची संतान के समान, उन्होंने जीवन के पूर्ण उपभोग की वकालत की और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण इतना विशाल था कि उसमें प्रत्येक पहलू का समावेश हो जाता था; एक की अपेक्षा दूसरे पर अनावश्यक जोर दिए बिना सम्यक् रूप में संतुलित। यही वास्तव में वह जीवन था जो उन्होंने जिया। ऐसा प्रतीत होता है कि संतुलित जीवन पर यह जोर शुरू से ही उनके दिमाग में भर गया था। उनकी पहली ही कृति 'भूपरिक्रमा' का मुख्य विषय पुरुष-परीक्षा है और इस काल की अंतिम कृति 'कीर्तिलता' में केवल 'सुपुरुष' का वर्णन है।

किंतु इन सब बातों में विद्यापति ने अपने पूर्वजों का ही अनुसरण किया। प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक होने के बावजूद, वे प्रमुख रूप से राजपुरुष थे और

---

१ पुरुषपरीक्षा, ११९।

२. तत्रैव, ११८।

३. कीर्तिलता, १।१२

उनके सारे प्रयत्न समाज के विभिन्न वर्गों को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए होते थे जिससे कि मुस्लिम आधिपत्य का विरोध करने के लिए मिथिला एक राष्ट्र के रूप में सामने आये। उन्होंने इतनी मजबूत नींव पर एक ऐसे नवीन समाज की रचना की कि सांस्कृतिक मामलों मे उसने पूर्वोत्तर भारत का नेतृत्व ग्रहण कर लिया और अपने घर में वह अभी भी, लड़खडाते हुए सही, नेतृत्व कर रहा है। और उनका राजपुरुषत्व तिरहुत राज्य की गद्दी के प्रति निष्ठा मे उतना नहीं था, जितना कि मिथिला-भूमि और उसके निवासियो के प्रति उनकी निष्ठा मे था। पीढी दर पीढ़ी उन्होने सुनियोजित ढग से सामाजिक पुनर्गठन किया और विद्यापति वस्तुत. उनमें से अतिम थे—सर्वाधिक बुद्धिमान्, पुनर्जागरण के युग मे मिथिला द्वारा प्रसूत अतिदुर्लभ प्रतिभा।

विद्यापति व्यक्तिगत चरित्र पर इतना जोर इसलिए देते हैं और व्यक्तित्व की समग्रता इसलिए सस्तुत करते है कि यदि समाज की रचना सुपुरुषों से होती है, तो वे अपने साथ समाज का भी उत्थान कर लेगे। यह एक ऐसी बात है जो प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच के भीतर है, समाज मे उसकी स्थिति कुछ भी क्यो न हो। 'पुरुषपरीक्षा' के चौथे अध्याय की प्रस्तावना मे विद्यापति कहते है, "उसी पथ का अनुसरण करो जो उस जाति की परंपरानुसार है, जिसमें विधाता के विधान-वश तुम्हारा जन्म हुआ है।" इसलिए यदि समाज की रचना सुपुरुषो से होती है और जाति व धर्म, लिंग व आयु की अपेक्षा के विना समाज के सभी व्यक्तियों को एक साथ रखने के लिए एक सशक्त बंधन है, तो सामाजिक संगठन एक ऐसे राष्ट्र के रूप में खड़ा हो सकता है, जो जीवन के पूर्ण उपभोग के लिए विहित मार्ग से हटे बिना किसी भी बाहरी आक्रमण का सामना कर सकता है। और जन्म व उपलब्धियों की सभी भिन्नताओं की अपेक्षा के विना प्रदेश मे रहने वाले सभी लोगो को एक साथ बाँधने के लिए प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त दूसरा कौन-सा सुदृढ़ बंधन हो सकता है ? विद्यापति ने मिथिला में बोली जाने वाली भाषा को अपने लोकप्रिय गीतों का माध्यम बनाया और उसमें उतनी ही मधुर व मोहक अभिव्यक्ति भर दी, जो संस्कृत-भाषा में ही प्राप्य थी। सुसंस्कृत लोगों की उस समय तक की भाषा संस्कृत बहुत थोड़े-से पंडित-वर्ग तक ही सीमित थी और संस्कृत के सच्चे काव्य से प्राप्त अनुपम आनंद केवल उस वर्ग को ही उपलब्ध था। विद्यापति ने वह आनंद हर एक के लिए उपभोग्य सुगम बना दिया और जैसा कि हम आगे देखेंगे कि उन्होंने अपने गीतों के लिए वे ही विषय चुने, जो समाज के निम्नतम-वर्ग सहित सामान्य स्त्री-पुरुषों को प्रभावित कर सकते; किंतु उच्च अभिजात-वर्ग भी बहिष्कृत नहीं रहता। उन सुदूर दिनो से ही एक सार्वजनिक भाषा को राष्ट्रत्व की पक्की निशानी मान लिया गया था और मिथिला की भाषा को अपने लोकप्रिय गीतों की भाषा बनाना वस्तुत

मिथिला को सच्चे अर्थों में एक राष्ट्र बनाने का पहला निश्चित कदम था। यह उल्लेखनीय है कि आज भी मिथिला के हम लोग दूसरों से अलग एक सामाजिक इकाई के रूप में केवल अपनी भाषा के कारण जाने जाते हैं और वह भाषा अपनी विशिष्टता व सुघड़ अभिव्यक्ति के लिए विद्यापति के कवि-हृदय के उन गीतात्मक उद्‌गारों की ऋणी है, जो सभी सुनने वालों के दिलों पर मोहक प्रभाव डालते थे एवं केवल मिथिला में ही नहीं, अपितु विदेश में भी तुरंत साहित्य की एक अत्यंत लोकप्रिय विधा बन गए।

विद्यापति वास्तव में प्रगतिशील दृष्टिकोण रखते थे और उनके समय को ध्यान में रखते हुए, हम उनके दृष्टिकोण को आधुनिकप्राय कह सकते हैं। वे स्त्री-शिक्षा के दृढ प्रवक्ता थे। उस युग में सुसंस्कृत परिवारों में कन्याओं की शिक्षा पर समुचित ध्यान दिया जाता था और ओइनवर राजपरिवार की महिलाएँ सुशिक्षित थीं। शिवसिंह की पत्नी लखिमा, इसी नाम की चंडेश्वर की पत्नी और विद्यापति की पुत्रवधू चंद्रकला विख्यात कवयित्रियाँ थीं। विद्यापति ने इसका बड़े पैमाने पर प्रचार किया और उन्होंने पुरुषपरीक्षा की रचना एक ऐसी पाठ्यपुस्तक प्रस्तुत करने के स्पष्ट उद्देश्य से की, जो 'कामकलाओं में रुचि रखने वाली नागरी-वनिताओं के मनोरंजन हेतु' हो। उनके प्रेम-गीतों का एक उद्देश्य महिलाओं को यौन-शिक्षा प्रदान करना था। अपने एक गीत में विद्यापति कहते हैं कि वे 'नागरी'[1] के गुणों को सिखाना चाहते हैं और, जैसा कि ग्रियर्सन ने अनुवाद किया है, व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'नागरी' का अर्थ यद्यपि 'नगर की स्त्री' होता है तथापि संस्कृत साहित्य में और विद्यापति के द्वारा भी, उसका प्रयोग काम-कला में निपुण महिला का निर्देश करने के लिए हुआ है।

सामान्य शिक्षा के प्रति विद्यापति के निश्चित विचार थे। अपनी सोलहवीं कहानी शस्त्रकला-निपुण की कथा के प्रारंभिक पद्य में विद्यापति कहते हैं, "स्वभावतः पुस्तकीय ज्ञान शस्त्र-ज्ञान से छोटा है, क्योंकि शस्त्रों के द्वारा राज्य को सुरक्षित कर दिए जाने पर ही पुस्तकीय ज्ञान का विचार आता है"। यहाँ पर विद्यापति स्पष्टतः अनिवार्य सैनिक-शिक्षा का पक्ष लेते हैं और हम इस बात को तुरंत मान सकते हैं कि यह उन दिनों में कितना तात्कालिक व आवश्यक रहा होगा जबकि मुस्लिम आक्रमण के निरंतर आतंक से देश की सुरक्षा खतरे में थी और मिथिला ने हजारों वर्षों से ज्यादा समय तक देश की निर्बल सुरक्षा से उद्‌भूत बुराइयों का अनुभव किया था।

धार्मिक मामलों में विद्यापति को साम्प्रदायिक कहा गया है, कुछ उन्हें

---

१ नागरीपन किछु कहए चाहइं क० १४१।

वैष्णव कहते है, कुछ शैव, किंतु विद्यापति का यह समझदारी भरा विचार था, 'परमात्मा केवल एक हैं और इस दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उनके द्वारा उत्पन्न न हो''[१] तथा ''उनकी महत्ता केवल नामों के द्वारा ही भिन्न है''[२]। अपने गीतों में भी विद्यापति हर और हरि की भिन्नता के मत का खडन करते है।[३] अपनी कृति 'शैवसर्वस्वसार' की प्रस्तावना मे वे अपने इस विचार के समर्थन मे शास्त्रों के उद्धरण देते है कि हर और हरि में कोई अंतर नही है तथा एक की भक्ति दूसरे की भक्ति के समान ही है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा के किसी भी रूप की आराधना करने के लिए स्वतंत्र है और विद्यापति शिव-रूप की उपासना करते थे, किंतु इसका यह मतलब नही कि वे हरि का निरादर करते थे या उनकी भक्ति के विरुद्ध थे।

शिव की भक्ति में रचे गए विद्यापति के अनेकों गीतों के विषय में बहुत कुछ कहा गया है, किंतु इस संबंध में यह याद रखना चाहिए कि विद्यापति ने न केवल शिव-भक्ति विषयक, अपितु विष्णु, देवी, गंगा आदि दूसरे हिन्दू-देवताओं की भक्ति-विषयक गीतों की भी रचना की थी। यह सही है कि भावनात्मक रूप से विद्यापति शिव-रूप में परमात्मा की आराधना करते थे; किंतु परंपरानुसार वे, प्रत्येक स्मार्त-मैथिल के समान, पंचदेवोपासक थे। उनके द्वारा शिव की भक्ति में इतने अधिक गीत रचे जाने का कारण केवल यही था कि सभी हिन्दू-देवताओं में शिव ही एक ऐसे है-जिनकी भक्ति व पूजा, ब्राह्मण से लेकर चाडाल तक, हर जाति के स्त्री-पुरुषों के लिये शास्त्र-सम्मत है। इसलिए शिव-भक्ति के गीत ही ऐसे भक्तिगीत थे जो लिंग व जाति की अपेक्षा के बिना उन सभी सर्वसाधारण स्त्री-पुरुषों को प्रभावित कर सकते थे, जिनके लिए विद्यापति ने इन्हें लिखा था।

विद्यापति ने अपने अधिकांश गीत इसी काल में लिखे थे और चूंकि अब उनकी कीर्ति मुख्यतः इन्हीं गीतों पर आधारित है, इस विषय पर अलग से चर्चा की जायेगी। इस काल में रचित चारों मौलिक और सर्जनात्मक कृतियो मे से प्रथम है कीर्तिपताका—प्राचीन मैथिली या अवहट्ठ में लिखा गया एक स्तुतिकाव्य जिसमें एक (उपलब्ध पांडुलिपि में अनुल्लिखित नाम वाले) मुसलमान पर शिवसिंह की विजय का वर्णन है। इस कृति की केवल एक ताड़-पत्र पर लिखित पाडुलिपि काठमांडू (नेपाल) के वीर-ग्रंथालय में उपलब्ध है, जिसकी खोज महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने की थी। यह अत्यधिक जीर्ण और अपूर्ण

---

१. पुरुषपरीक्षा, अध्याय ४, पद्य ५।
२ तत्रैव, अध्याय ४, पद्य १०।
३ हरगौरी पदावली में क्र० ६ (एन० गुप्त का संस्करण)।

है तथा सभी प्रकार की भूलों व दुरूहताओं से भरी हुई है एवं स्व० महामहोपाध्याय शास्त्री ने इसे पुनर्निर्माण की दृष्टि से बेकार कहकर छोड़ दिया था। हाल ही में इस पांडुलिपि का एक संस्करण प्रयाग के डॉ० जयकांत मिश्र ने प्रकाशित किया है ; किंतु वह बहुत कम उपयोगी है। पत्रों का पृष्ठीकरण छूटा हुआ है ; किंतु अंतिम पृष्ठ ज्यों-की त्यों है और इससे यह स्पष्ट होता है कि यह शिवसिंह की विजय पर लिखित विद्यापति की कृति है ; किंतु पांडुलिपि के भीतर, मंगलाचरण सहित, दो प्रस्तावनाएं हैं। एक से ऐसा प्रतीत होता है कि यह उत्तरवर्ती ओइनबार दिनों के प्रसिद्ध कवि भीष्म की कृति है ; और दूसरी से ऐसा लगता है कि यह (विद्यापति के प्रसिद्ध उपनाम) अभिनव जयदेव के द्वारा अर्जुन के मनोरंजन हेतु रचित एक प्रेम-काव्य है। यह कीर्तिपताका नहीं हो सकती, जो एक वीर काव्य है, न कि प्रेमकाव्य। इसलिए ऐसा लगता है कि इस गट्ठर में प्राचीन मैथिली की तीन अलग-अलग पांडुलिपियों के पत्र मिल गए हैं, जो पृष्ठीकरण के अभाव में पृ .क् नहीं किये जा सकते। उनमें से एक भीष्म-कृत काव्य है, दूसरी अर्जुन राय के लिये लिखित विद्यापति-कृत एक प्रेम-कविता है , और तीसरी कीर्तिपताका है जिसका पहला पत्र नहीं है, किंतु गट्ठर के आखीर में अंतिम पत्र स्पष्ट है, जिससे प्रत्येक ने यह अनुमान लगा लिया कि यह पूरा गट्ठर कीर्तिपताका की एक ही पांडुलिपि का है। भीष्म की कोई भी कृति अभी तक प्रकाश में नहीं आई है और न ही अर्जुन राय के लिए लिखित विद्यापति की कोई प्रेम-कविता।

विद्यापति की दूसरी कृति पुरुषपरीक्षा है जिसकी रचना, गोरक्षविजय के साथ, उस समय की गई थी जब शिवसिंह राज्य कर रहे थे। विद्यापति के व्यक्तित्व को समझने के लिए यह कृति अत्यंत मूल्यवान् है और उस युग की आत्मा भी इसमें प्रतिबिंबित है। इसका प्रारूप बहुत पहले तैयार किया गया था। जब उन्होंने लिखना शुरू किया, तब इसे प्रारंभ किया गया तथा जब वे अपने निर्णय में परिपक्व, अपने सिद्धांतों में पक्के और एक उच्च-कोटि के लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो गये तब इसे पूरा किया गया। अपनी कृति की प्रस्तावना में, जो भूपरिक्रमा में नहीं है, विद्यापति कहते हैं कि उन्होंने ये कहानियाँ लिखी हैं, "अपरिपक्व बुद्धि वाले लड़कों की नैतिक शिक्षा के लिए और कामकला में रुचि रखने वाली नागरियों के मनोरंजन के लिए" (पद्य ३) और आगे पूछते हैं, "क्या विद्या-निपुण-बुद्धि वाले ज्ञानीजन कहानियों में सन्निहित नैतिक शिक्षा और उनकी सुघड़ भाषा के कारण मेरी कृति को नहीं सुनेंगे ?" इस प्रकार ये कहानियाँ पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियों की श्रेणी में ही आती हैं; अंतर केवल यही है कि उनकी कहानियाँ नीतिकथाएँ या लोककथाएँ हैं जब कि विद्यापति की कृति में ऐसी कथाएँ हैं जो

वास्तव में घट चुकी हैं या जिनके घटने का विश्वास था। पुरुषपरीक्षा के चार अध्यायों में कुल ४४ कहानियाँ हैं ; और पहले अध्याय की ८ कहानियाँ पूर्वलिखित कृति भूपरिक्रमा से ज्यों की त्यों ले ली गई हैं। इनमें से कुछ वस्तुत ऐतिहासिक है और अचरजों से भरी हुई कहानियाँ भी कुछ इस प्रकार की है जिन पर सामान्य लोगों का विश्वास था। इस पुस्तक का अनुवाद १८१५ में सीरामपुर में एच० पी० राय ने बंगाली में किया था और दूसरा संस्करण १८२६ में लंदन में जी० हाफ्टनद्वारा प्रकाशित किया गया था। इसे कालेज आफफोर्ट विलियम में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में प्रवेश करने वालों के लिए एक पाठ्य-पुस्तक के रूप में रखा गया था।

पुरुषपरीक्षा अपनी भाषा की सरलता और शालीनता के लिए उल्लेखनीय है। भूपरिक्रमा और पुरुषपरीक्षा के मध्य ज्यादा नहीं तो कम से कम २० वर्षों का अंतर है ; किंतु संपूर्ण कृति की शैली में यह बतलाने वाली बातें बहुत कम हैं कि पुरुषपरीक्षा का पहला भाग भूपरिक्रमा के रूप में प्रकाशित उनकी युवावस्था की पहली प्रामाणिक कृति है ; जब कि शेष कृति की रचना उनकी परिपक्व आयु में की गई थी। यह संस्कृत अभिव्यक्ति के ऊपर उनके अधिकार को प्रदर्शित करती है जो वस्तुतः जन्मजात था। इस कृति में अनेक ऐसे रूप हैं जो पाणिनीय व्याकरण के अनुसार नहीं है और यह कृति पूरी तरह मैथिली से प्रभावित है। फिर भी इससे अभिव्यक्ति का नाश हुए बिना भाषा सरल हो गई है। इन सब बातों से ऐसा विश्वास उत्पन्न होता है कि विद्यापति ने इस कृति मे एक ऐसी सामान्य संस्कृत भाषा का निर्माण करने का प्रयत्न किया था जो सरल और सुबोध किंतु सशक्त और शालीन हो तथा जिसे लोकप्रिय बनाकर संस्कृत की एक ऐसी नवीन शैली प्रचलित की जावे जिसे सुगमता-पूर्वक भाषा सीखने के इच्छुक सामान्य स्त्री-पुरुष सरलता से सीख सकें। यदि विद्यापति के उदाहरण का अनुसरण किया जाता, तो मिथिला के लिए विशिष्ट एक सामान्य संस्कृत भाषा बन जाती ; किंतु दूसरे दृष्टिकोणों के समान इसमें भी विद्यापति अपने समय से बहुत आगे थे और विद्यापति की मृत्यु के तुरंत बाद जो अधःपतन का युग प्रारंभ हुआ उसमें मिथिला का सांस्कृतिक जीवन पुरातनपंथी पंडितवर्ग के हाथों में पड़ गया और विद्यापति का मजाक उड़ाया गया। उनके आधुनिकीकरण के प्रयासों की निंदा की गई, उनकी मौलिक देनों की उपेक्षा की गई, केवल एक बात को छोड़कर जो है मैथिली के गीतों की वह परंपरा जो इन छह शताब्दियों मे भी लाखों मैथिल स्त्रियों की जिह्वा पर विद्यमान है।

जब शिवसिंह राज्य कर रहे थे तभी गोरक्षविजय नाटक भी लिखा गया था। यह एक छोटा-सा नाटक है जिसे आसानी से मंच पर खेला जा सकता है। इस युग में मंच पर खेले जाने के लिए कई छोटे-छोटे नाटक संस्कृत में लिखे गए

थे और उनमें शंकरमिश्र द्वारा लिखित गौरी-दिगम्बर प्रहसन सम्भवतः सर्वाधिक विख्यात था। किन्तु यहाँ पर भी विद्यापति ने एक नवीनता प्रस्तुत की और यदि विद्यापति के द्वारा प्रस्तुत भावना का अनुसरण किया जाता तो मैथिली, जिस प्रकार गीतों में, उसी प्रकार नाटक में भी एक शुद्ध परम्परा स्थापित करने वाली सबसे पहली आधुनिक भारतीय भाषा होती। विद्यापति ने संस्कृत और प्राकृत गद्य और पद्य में लिखे गए नाटक में मैथिली गीतों को रखा। इसका अगला कदम मैथिली में ही सम्पूर्ण नाटक का सर्जन होता, जैसा कि असम में शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव के द्वारा किया गया था अथवा नेपाल के मल्ल-राजाओं के विभिन्न दरबारी कवियों की लम्बी शृंखला द्वारा किया गया था। किन्तु विद्यापति आगे नहीं बढ़ सके सम्भवतः शिवसिंह के गायब हो जाने के कारण और अपने भाग्य में एकाएक परिवर्तन हो जाने के कारण। उनकी प्रेरणा का स्रोत सूख गया और उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा निष्फल हो गयी। मिथिला में उनके उत्तराधिकारी परम्परा का पालन करते रहे और उनकी नकल करते रहे किन्तु उसी रूप में जो गुरु ने प्रस्तुत किया था। आगे आने वाली शताब्दियों में इस प्रकार के कई नाटक लिखे गए किन्तु उन सब नाटकों में केवल गीत ही मैथिली में हैं। शुद्ध मैथिली नाटक तो मिथिला में इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ही लिखा गया।

इस काल की अन्तिम कृति, और विद्यापति की कृतियों में सबसे अधिक विवादास्पद, कीर्तिलता है। यह पुरानी मैथिली या अवहट्ठ गद्य-पद्य में लिखित कृति है और मिथिला में ओइनबार शासन के प्रारम्भिक दिनों के ऐतिहासिक वृत्तांत को बतलाने के लिए लिखी गयी है कि किस प्रकार जौनपुर के शर्की नवाब इब्राहिमशाह की मदद से कीर्तिसिंह ने अपने पिता की हत्या का बदला लिया। किन्तु दूसरे स्रोतों से ज्ञात घटनाओं से कीर्तिलता का वृत्तांत मेल नहीं खाता। गणेश्वर की हत्या लौ०सं०२५२में हुई, जो कीलहार्न की गणना के अनुसार ईस्वी सन् १३७१ है; किन्तु विद्यापति के अनुसार (जो कहते हैं कि शिवसिंह लौ०सं० २९३ तदनुसार शक सम्वत् १३२४ में गद्दी पर बैठा) यह घटना ईस्वी सन् १३६१ में घटित प्रतीत होती है। किन्तु यह मान लेने पर भी कि ईस्वी सन् १३७१ में गणेश्वर को मारा गया था, इब्राहिमशाह के जौनपुर का नवाब बनने में ३० वर्षों का अन्तर पड़ जाता है। कीर्तिलता में इन्हें मिथिला में अराजकता और अव्यवस्था के वर्ष बतलाया गया है किन्तु हम जानते हैं कि इसी समय मिथिला में शिवसिंह का शासन था और उसके दृढ़ शासन के अन्तर्गत चारों ओर शान्ति और सुख-समृद्धि थी।

कीर्तिलता की विषय-वस्तु कीर्तिसिंह की यशोगाथा है, जिसने अपने धैर्य और अध्यवसाय, शूरता और दृढ़प्रतिज्ञा के द्वारा अपने को एक सच्चा पुरुष सिद्ध

कर दिया था, किन्तु वास्तव में यह इब्राहिमशाह का स्तुति-काव्य है, जिसकी अतिशय प्रशंसा की गयी है और जिसे अपने समय के सर्व-शक्तिमान् नवाब और महानतम विजेता के रूप में बहुत ऊँचा उठा दिया गया है। काव्य के रूप में कीर्तिलता में वह उत्कृष्टता नहीं है, जो विद्यापति के काव्य की विशिष्टता है और इसलिए उसे उनके प्रारम्भिक वर्षों की कृति माना गया है, किन्तु ईस्वी सन् १४०० में इब्राहिमशाह के जौनपुर का नवाब होने के पहले की यह कृति नहीं हो सकती जिस समय विद्यापति ५० वर्ष के थे और इसलिए उपर्युक्त स्पष्टीकरण का इतिहास के साथ विरोधाभास है। भाषा की दृष्टि से कीर्तिलता स्थान-स्थान पर दुरूह है, अंशतः इसलिए कि जिस एकाकी पाण्डुलिपि से इसके विभिन्न संस्करण प्रकाशित किए गए हैं वह गलतियों और दुरूहताओं से भरी हुई है और अंशतः इसलिए भी कि इसमें विशुद्ध मैथिली शब्दों, पद्यांशों, कभी-कभी वाक्यों का भी प्राकृत और अपभ्रंश के साथ मिश्रण है और बीच-बीच में फारसी और अरबी के शब्द भी हैं, खासकर जहाँ-जहाँ मुस्लिम दरबार और फौज का वर्णन है। इस कृति के पाँच विभिन्न संस्करण प्रकाशित हुए हैं और प्रमुख विद्वानों ने उनका अध्ययन करके अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं। यहाँ पर किसी विस्तृत विवाद में पड़ना सम्भव नहीं है। मैंने इस कृति के अपने संस्करण की प्रस्तावना में अपने विचार स्पष्ट किए हैं और नीचे अपना मत व्यक्त कर रहा हूं।

यह एक तथ्य है कि जब शिवसिंह राजा थे तभी इब्राहिमशाह ने गद्दी पर बैठते ही तिरहुत पर आक्रमण किया। यह भी एक तथ्य है कि गद्दी पर बैठने के ४ वर्षों के भीतर ही शिवसिंह हारा था, सही-सही ३ वर्ष ९ माह बाद १४०५-६ की हेमन्त-ऋतु में। किन्तु इतिहास या परम्परा से यह ज्ञात नहीं होता कि शिवसिंह किससे और क्यों हारा तथा इब्राहिमशाह ने किसके विरुद्ध मिथिला पर चढ़ाई की थी। किन्तु इब्राहिम का आक्रमण और शिवसिंह का पतन एक ही समय हुए प्रतीत होते हैं और क्योंकि शिवसिंह का उस राज्य पर अधिकार था जिसे कीर्तिसिंह अपनी पैतृक सम्पत्ति मानता था, यह सम्भव है कि कीर्तिसिंह की मदद करने के लिए इब्राहिम ने शिवसिंह पर आक्रमण किया और युद्ध में शिवसिंह हार गया। यदि यह तथ्य है तो मिथिला के सामने जौनपुर के राज्य में मिल जाने और विजयी सेना के द्वारा नष्ट किए जाने का खतरा था। किन्तु मिथिला को नहीं मिलाया गया और यह विश्वास करने का हमारे पास प्रमाण है कि शिवसिंह का उत्तराधिकारी उसका भाई पद्मसिंह बना। इब्राहिमशाह कला और साहित्य का एक महान् संरक्षक था तथा शिवगीतों के रचयिता

विद्यापति की कीर्ति जौनपुर के इब्राहिमशाह तक पहुंच गयी होगी।[1] इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि शिवसिंह के गायब हो जाने पर विद्यापति ने कीर्तिलता की रचना की और इसके साथ ही वे नवाब के पास गए, उसे खुश किया और शिवसिंह की हार के परिणामस्वरूप होने वाले विनाश और राज्य-विलय से मिथिला को बचा लिया।

कवि के लिए यह अत्यन्त खिजाने वाली बात रही होगी कि अपने संरक्षक मित्र का नाश करने वाले और अपने जीवन के सपनों का अंत कर देने वाले सुल्तान की उन्हें प्रशंसा करनी पड़ी; किन्तु एक विचक्षण राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी सर्वप्रथम निष्ठा उस भूमि और जनता के प्रति थी जिसके लिए उन्हें अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को दबाना पड़ा और मिथिला को बचाने के लिए अपनी प्रतिभा का उपयोग करना पड़ा; जिस प्रकार उन्होंने शिवसिंह को बचाने के लिए उस समय अपनी प्रतिभा का उपयोग किया था जिस समय राजस्व न देने के कारण उसे कैद कर लिया गया था। इस तरह से कीर्तिलता की सभी समस्याएं हल हो जाती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह कविता किस कारण प्रशंसा और काल्पनिक वर्णनों से भरी हुई है, सावधानीपूर्वक शिवसिंह का कोई उल्लेख नहीं करती, और कीर्तिसिंह के पिता क भाड़े के हत्यारे को सुल्तान के आक्रमण का लक्ष्य बनाती है। इससे बहुसंख्यक फारसी और अरबी के शब्दों के प्रयोग का तथा विद्यापति के काव्य के विशिष्ट गुणों के अभाव का कारण भी स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि अपने संरक्षकमित्र के पतन की व्यथा के समय किसी भी कवि से उत्तम रचना की आशा नहीं की जा सकती। इस उपकल्पना के अनुसार कीर्तिलता की रचना १४०६ की प्रारंभिक ग्रीष्म-ऋतु में हुई थी। यह अपने सर्वोत्तम रूप में एक ऐतिहासिक रूमानी काव्य है, जिसमें केवल मूल तथ्य ही ऐतिहासिक है और जिसकी रचना एक मुस्लिम विजेता को खुश करने के लिए की गयी थी।

५

१४०६ के प्रारम्भिक दिनों में शिवसिंह के हार जाने और गायब हो जाने से विद्यापति के जीवन की दिशा बदल गयी। उनके जीवन का प्रकाश और उनकी प्रेरणा का स्रोत अंतर्धान हो गया। राजा के साथ ही उनके सारे सपने अदृश्य हो गए। उनके हृदय की व्यथा और भी अधिक तीक्ष्ण हो गयी, क्योंकि राजा के मरने या जीवित रहने का कोई भी समाचार नहीं मिला। राजा का उन पर इतना

1 काशी नागरी प्रचारिणी सभा का खोज-प्रतिवेदन, १९४४-४६, हेतु; द्रष्टव्य लखन सेनी कृत हरिचरित्र का विराट् पर्व।

विश्वास था, उनके चरित्र पर इतना भरोसा था, उनकी प्रामाणिकता और विवेक के प्रति इतनी दृढ़मति थी कि जब वह अपनी अंतिम लड़ाई के लिए रवाना हुआ तब उसने देख-रेख के लिए अपनी छहों पत्नियों को विद्यापति को सौंप दिया; और चूँकि राजा का मृत शरीर भी नहीं मिल सका, इसलिए शास्त्रों के अनुसार उसके अंतिम संस्कार के लिए उन्हें १२ वर्षों तक रुकना पड़ा। विजयी सेना के द्वारा अपमानित किए जाने के डर से विद्यापति ने उन्हें शिवसिंह के मित्र सप्तरी के द्रोणवर राजा पुरादित्य के पास (इस समय नेपाल की तराई में स्थित) राज बनैली में भेज दिया और जैसे ही मिथिला राज्य में सबकुछ ठीक हो गया, वैसे ही वे स्वयं स्वैच्छिक निष्कासन का जीवन बिताने के लिए एवम् छहों रानियों की देख-रेख करने के लिए वहीं चले गए तथा वे सब बारह लम्बे वर्षों तक लापता राजा के समाचार की प्रतीक्षा करते रहे।

राज बनैली में स्वैच्छिक निष्कासन के ये वर्ष विद्यापति के जीवन के सर्वाधिक अन्धकारमय दिन थे। उनके सामने निराशा व ऊब के सिवाय और कुछ नहीं था। सर्जनात्मक प्रतिभा मर चुकी थी और कविता छूट गयी थी। निस्सन्देह उन्होंने सप्तरी के राजा के लिए पत्र, दस्तावेज आदि से सम्बन्धित संस्कृत में एक पुस्तिका लिखी और यह लिखनावली उनकी इस काल की एक मात्र कृति है। पत्रों पर लिखी गयी सभी तिथियाँ लौ० सं० २९९ हैं, जिससे यह मालूम होता है कि यह कृति इसी वर्ष लिखी गयी थी। यह पुस्तक प्रकाशित हो गयी है और पत्र तथा दूसरे दस्तावेज उस समय के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और व्यापारिक जीवन पर काफी प्रकाश डालते हैं।

राज बनैली में विद्यापति के लिए कुछ काम नहीं था और वे रामायण, महाभारत और पुराणों का विस्तार से अध्ययन करते रहे। यह सोचकर कि संभवत: शिवसिंह और उनके विलासों को भगवान् कृष्ण के समान मानकर स्तुति करने के अनाचार का ही यह दण्ड है, विद्यापति वैष्णव पवित्र-ग्रन्थ श्रीमद्भागवत की नकल करने में लग गए, जिसे उन्होंने राज बनैली में मंगलवार को लौ०सं० ३०९ में श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को पूरा किया, जबकि प्रतीक्षा का समय समाप्त हो रहा था। यह ताड़-पत्रों पर ५७६ पत्रों पर लिखा गया है, प्रत्येक पत्र २७ इंच लम्बा और पाँच इंच चौड़ा है, प्रत्येक पृष्ठ पर पाँच पंक्तियाँ है, प्रत्येक पंक्ति में ११२ अक्षर हैं, जो सुपाठ्य, अत्यन्त स्पष्ट और बहुत कम कटेपिटे हैं, जिससे मालूम पड़ता है कि विद्यापति ने इसे कितनी सावधानी और ध्यान से लिखा था। यह पूरी पाण्डुलिपि संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, के पुस्तकालय मे सुरक्षित है और देखने के लायक है। ये कवि के अभी तक उपलब्ध एकमात्र हस्ताक्षर हैं।

बारह वर्षों की इस दुःखदायी प्रतीक्षा के समाप्त होने पर शिवसिंह के अंतिम-संस्कार कर दिये गए और यद्यपि दूसरी रानियों के विषय मे कुछ ज्ञात

नहीं है, लखिमा के विषय में कहा जाता है कि वह उसी जगह चिता पर जल गयी, जिस जगह कुश से बना हुआ राजा का शरीर जलाया गया था। बिछुड़े हुए राजा के द्वारा प्रदत्त धरोहर से उन्मुक्त होकर विद्यापति घर वापस लौटे—एक परिवर्तित व्यक्ति, उदास और वृद्ध, सत्तरवें वर्ष में पहुँचते हुए। उस समय शिवसिंह के छोटे भाई पद्मसिंह की पहली पत्नी विश्वास देवी मिथिला पर शासन कर रही थी। कुछ विद्वानों[1] का यह कथन है कि शिवसिंह के उपरान्त उसकी विधवा लखिमा ने बारह वर्षों तक शासन किया और फिर पद्मसिंह व विश्वास देवी ने तेरह वर्षों तक। किन्तु यह भूल है। चूँकि शिवसिंह को बारह वर्षों तक मृत घोषित नहीं किया गया था, इसलिए उत्तराधिकार का प्रश्न ही नहीं उठता। शिवसिंह की कोई संतान नहीं थी और न ही पद्मसिंह की। कानूनन उसकी विधवा लखिमा उसकी अनुपस्थिति में शासन करने की अधिकारिणी थी किन्तु वह राज बनौली में रहती थी और मिथिला वापिस नहीं गयी। उसने अपनी जगह अपने देवर को शासन करने के लिए नियुक्त किया। पद्मसिंह बहुत जल्द स्वर्गवासी हो गया और उसकी जगह उसकी पत्नी विश्वास देवी ने शासन की बागडोर सभाल ली। किन्तु एक स्त्री शासक के रूप में गद्दी पर नहीं बैठ सकती थी और इसलिए मृत राजा के अंतिम-संस्कार किए जाने के बाद उत्तराधिकारी का प्रश्न उठा तथा भवसिंह के सबसे छोटे बेटे हरसिंह के पास राजगद्दी वापिस गयी। किन्तु इस बात में सन्देह है कि वह उस समय जीवित था या नहीं और नियमानुसार उसका बेटा नरसिंह, शिवसिंह का अगला पुरुष-उत्तराधिकारी बना। जो भी हो, बारह वर्ष की प्रतीक्षा का समय अलग-अलग लखिमा और पद्मसिंह व विश्वास देवी के हक में बतलाया गया है। यह रुचिकर है कि देवसिंह से प्रारम्भ करके ओइनवर वंश के प्रत्येक शासक राजा ने राजगद्दी पर बैठने के बाद एक विरुद धारण किया था। देवसिंह गरुड़नारायण था, शिवसिंह रूपनारायण था, नरसिंह दर्पनारायण था आदि-आदि। पद्मसिंह का कोई विरुद नहीं मिलता, जिससे मालूम पड़ता है कि वह केवल एक राजप्रतिनिधि था, राजा नहीं; इसी प्रकार हरसिंह का भी विरुद नहीं मिलता, इसलिए इस बात में संदेह है कि क्या जब शिवसिंह के मृत घोषित हो जाने के बाद उत्तराधिकार का प्रश्न उठा, तब वह जीवित था ?

किन्तु विद्यापति एक सक्रिय रहने वाले व्यक्ति थे और वे जीवन के कर्त्तव्यों से हटे नहीं। वे तिरहुत के राजा के दरबार में शामिल हो गए और लौटने के बाद के अपने जीवन के अंतिम बीस से कुछ अधिक वर्षों तक उन्होंने तीन राजाओं के [illegible] में काम किया—हरसिंह उसका बेटा नरसिंह और उसका बेटा धीरसिंह।

उन्होंने चार राजकीय व्यक्तियों के लिए सात पुस्तकें लिखी—दो विश्वास देवी के लिए, एक नरसिंह के लिए, एक उसकी पत्नी धीरमति के लिए और अंतिम धीरसिंह के लिए। ये सभी स्मृति-ग्रन्थ हैं, सभी संस्कृत में हैं, सभी संकलन हैं और एक भी मौलिक सर्जनात्मक कृति नहीं है। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि वे दरबार में तो शामिल हुए किन्तु एक सक्रिय दरबारी के रूप में नहीं, अपितु एक वृद्ध राजनीतिज्ञ के रूप में, जो कानून, आचार-विचार या नीति से संबंधित मामलों पर सलाह देने के लिए हमेशा तैयार रहते थे, किंतु किसी स्वतंत्र उत्तर-दायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त नहीं थे। कुछ विद्वानों का कथन है कि उन्होंने कुछ भक्ति-गीत भी लिखे विशेषतः जिनमें वृद्धावस्था की निराशा और ऊब इतनी प्रामाणिकता और इतनी भावुकता के साथ वर्णित है; किन्तु गीतों में व्यक्त भावनाएँ उनके व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित नहीं मानी जा सकतीं। विद्यापति ने परकीया-प्रेम से संबंधित सैकड़ों गीत लिखे हैं, किन्तु बंगाल के सहजिया के समान, हमें यह विचार नहीं रखना चाहिए कि विद्यापति स्वयं गैरकानूनी प्रेम-संबंधों में सम्मिलित थे। जिस तरह संस्कृत में, उसी तरह मैथिली में भी कविता व्यक्ति-बाह्य होती है और जो हृदय की सच्ची उक्ति प्रतीत होती है वह वास्तव में कवि के द्वारा स्वयं कल्पना-शक्ति से निर्मित भावना की सघनता है।

विश्वास देवी के नाम से जुड़े हुए दो ग्रन्थ हैं—शैवसर्वस्वसार, जो शिव की पूजा से संबंधित है और गंगा वाक्यावली, जो सामान्यतः पवित्र गंगा की तीर्थ-यात्रा से और विशेषतः तीर्थों और वहां किए जाने वाले कृत्यों से संबंधित है।

शैवसर्वस्वसार शिवपूजा के सभी पहलुओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करने वाला एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जो मैथिल जनों के लिए एक सर्वमान्य विषय है। किन्तु यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है और इसकी पाण्डुलिपियाँ अत्यन्त दुर्लभ हैं। गंगाविषयक ग्रन्थ भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, विशेषतः इसलिए भी कि उसमें आह्निक, ब्राह्मण के दैनिक आवश्यक कर्त्तव्यों, से संबंधित विस्तृत चर्चा है। यह पुस्तक डॉ० जे० बी० चौधरी द्वारा संपादित "कान्ट्रीब्यूशन्स ऑफ वीमेन टू संस्कृत लिटरेचर" पुस्तक माला में प्रकाशित हो चुकी है। इन दोनों ग्रन्थों की, उस काल के दूसरे ग्रन्थों के समान ही, विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक कथन के समर्थन में शास्त्रों से बहुमूल्य उद्धरण दिये गए हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि विद्यापति ब्राह्मणों के शास्त्रीय साहित्य के कितने अच्छे ज्ञाता थे और उनकी स्मृति कितनी आश्चर्यजनक थी कि उन्होंने ये उद्धरण सही-सही उद्धृत किए हैं; क्योंकि उस समय के ग्रन्थ पाण्डुलिपि में ही रहते थे और विशेष संदर्भ में आवश्यक होने पर तत्संबंधी ग्रंथ को पांडुलिपि में देखना सरल नहीं था।

इतना ही अधिक विस्तृत दूसरा ग्रंथ दानवाक्यावली है जो सन १८८३ में

वाराणसी में प्रकाशित हुआ था और अब बहुत समय से अमुद्रित है। इसे नरसिंह की दूसरी पत्नी रानी धीरमति के लिए संकलित किया गया था और उसे ही समर्पित है। इस ग्रंथ में विभिन्न प्रकार के दानों का वर्णन है और उनके संकल्प वाक्य दिए गए है एवं प्रत्येक के समर्थन में शास्त्रीय उद्धरण हैं।

विद्यापति का अंतिम ग्रंथ 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' है जो शिवगंगा और दान संबंधी ग्रंथों के समान है तथा मिथिला के लोकप्रिय उत्सव दुर्गा-पूजा का विस्तार-पूर्वक वर्णन करता है। ऐसा कहा जाता है कि इसे भैरवसिंह के आदेश से उस समय संकलित किया गया था, जिस समय उसका भाई धीरसिंह शासन कर रहा था। विद्यापति उस समय ८० वर्ष से ऊपर रहे होंगे। विद्यापति की अभी तक कोई भी कृति ऐसी नहीं मिली है, जो इसके बाद की मानी जा सके।

ये सभी ग्रंथ विधि-विधानों से संबंधित हैं, जो सामाजिक और धार्मिक हैं, किंतु इस काल का 'विभागसार' नामक एक ऐसा ग्रंथ है, जो हिन्दुओं के उत्तराधिकार कानून से संबंधित है और जिसे नरसिंह दर्पनारायण के आदेश से संकलित किया गया था। इसलिए कालगणना की दृष्टि से यह ग्रंथ गंगा और दान संबंधी ग्रंथों के बीच में आता है। क्या कारण हो सकता है कि जब विद्यापति लगभग ८० वर्ष के हो चुके थे, तब उन्होंने इस गंभीर ग्रंथ का संकलन किया, विशेषतः जबकि इस विषय पर इतनी अधिक आधिकारिक संहिताएँ विद्यमान थीं? यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है और इस पर योग्य ध्यान नहीं दिया गया है। यदि हम इस ग्रन्थ की विषय-सूची पर नजर डालें तो हम पायेंगे कि इसमें एक ही मुद्दे पर अधिक जोर देकर चर्चा की गयी है, और बाकी वे ही सामान्य बातें हैं जो कि इस विषय से संबंधित किसी भी ग्रंथ में हो सकती हैं, तथा वह मुद्दा यह है कि राज्य अविभाज्य है और वह ज्येष्ठता के क्रम से ही उत्तराधिकार में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब नरसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी बना, तब उसके सौतेले भाइयों ने राज्य का विभाजन करवाना चाहा और उनमें से एक रणसिंह ने सचमुच दुर्लभनारायण विरुद धारण कर लिया। नरसिंह को अपने पुत्रों से भी खतरे की आशंका थी और वस्तुतः उसके तीनों पुत्रों ने राजत्व धारण कर लिया था। इसलिए यह बहुत संभव है कि जिस प्रकार नरसिंह के पितामह भवसिंह ने विद्यापति के पितामह वृद्ध चण्डेश्वर से यह समर्थन देने की सहायता माँगी थी कि वह नियमित राज्याभिषेक के संस्कारों के बिना ही सीमित राजत्व धारण कर सकें, इसी प्रकार नरसिंह ने भी अपने समय के वृद्ध पुरुष, चण्डेश्वर के परिवार के योग्य वंशज से इस बात के लिए समर्थन मांगा कि वे आधिकारिक ग्रंथों से यह सिद्ध कर दें कि राज्य का उत्तराधिकार वस्तुतः उत्तराधिकार के सामान्य नियम से नहीं बल्कि ज्येष्ठता-क्रम के विशेष नियम से नियंत्रित होता है और विद्यापति ने यह कार्य दूसरे ग्रंथों के अलावा चण्डेश्वर के पिता और अपने

प्रपितामह के बड़े भाई वीरेश्वर के नीतिसार से उद्धरण देकर आधिकारिक रूप से सपन्न किया। इस पीढ़ी के ओइनवरों में पारिवारिक झगड़ा हुआ था। यह बात लौ० सं० ३९४ या ईस्वी सन् १५०३[1] के अनुमतिदेवी के भगीरथपुर शिलालेख की एक पंक्ति से ज्ञात होता है। यह रानी भैरवसिह की पुत्रवधू, रामभद्र की पत्नी और अंतिम ओइनवर राजा कंसनारायण की माता थी। इस शिलालेख में उसकी इस बात के लिए प्रशंसा की गयी है कि उसने अपनी विनम्रता और कूटनीति के द्वारा अपने बान्धवों में सौहार्द उत्पन्न किया।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि बंगाल के मुसलमान नवाब के संभावित आक्रमण को नजर मे रखते हुए रानी अनुमति ने उत्तरवर्त्ती ओइनवरों के मतभेद को दूर किया था जो तीन पीढ़ियो से नरसिह के समय से चले आ रहे थे। इस प्रकार विद्यापति का यह ग्रंथ राजनीतिक कारणो से प्रेरित था और यह बतलाता है कि अपने समय के विद्वानों में वे कितने ऊँचे सम्मान से देखे जाते थे।

विद्यापति के दूसरे दो ग्रंथ और हैं जो सुपरिचित हैं किन्तु उपलब्ध नही है तथा वे है 'गयापत्तनक' अथवा गया में किए जाने वाले संस्कारों से संबधित ग्रंथ एवं 'वर्षकृत्य' जिसमें वर्ष भर में होने वाले उत्सवो का वर्णन है। इन दोनो मे से किसी की भी पूरी पाण्डुलिपि अभी तक नहीं मिली है और जो खंड-मिले हैं उनमें कोई भी प्रस्तावना नहीं है। यहाँ तक कि प्रत्येक ग्रंथ के आरंभ में रहने वाला मंगलाचरण भी नहीं है। ऐसा लगता है कि उपलब्ध खंड ग्रंथ के रूप मे संकलित नहीं किए गए थे, बल्कि विद्यापति के द्वारा समय-समय पर लिखी गयी टिप्पणियाँ मात्र थे। इस कारण यह कहना संभव नहीं है कि उनकी रचना किस समय हुई।

यह उल्लेखनीय है कि विद्यापति के ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ मिथिला मे दुर्लभ हैं। पुरुषपरीक्षा के अतिरिक्त और किसी भी ग्रंथ की पाण्डुलिपि सुलभ नही है। कीर्तिलता, कीर्तिपताका और गोरक्षविजय केवल नेपाल में उपलब्ध हैं और वहाँ भी केवल एक पाण्डुलिपि अत्यंत बुरी हालत में प्राप्त है। भूपरिक्रमा की केवल एक प्रति कलकत्ता के संस्कृत कालेज के संग्रह में है। लिखनावली की कोई भी पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है और यद्यपि करीब ७० वर्ष पहले मिथिला मे यह ग्रंथ छपा था लेकिन उसकी छपी हुई प्रति भी सुलभ नहीं है। शैवसर्वस्व-सार की एक अधूरी कृति दरभंगा में है और एक अधिक अच्छी कृति नेपाल मे है। ऐसा लगता है कि पुरुषपरीक्षा के अतिरिक्त उनके कोई भी ग्रंथ मिथिला मे लोकप्रिय नहीं हुए। यह स्पष्ट है कि विद्यापति के गीतों ने उनकी दूसरी

---

१ जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, खंड ४१, अनुच्छेद ३, १९५५।

२ किञ्चोच्चैर्विनयान्नयाच्च वात्सलं नीता यया बान्धवाः ·

रचनाओं को इतना अधिक ढक लिया कि उनकी लोकप्रियता उनके गीतों तक ही सीमित रही। पंडित-वर्ग उनके विचारों का बहुत आनाकानी से उल्लेख करता है और उन्हें एक अधिकारी विद्वान् नहीं मानता। महान् नैयायिक केशव-मिश्र (वाचस्पति के पौत्र) अपने दैवत-परिशिष्ट मे विद्यापति की गंगावाक्यावली का अत्यंत सम्मानपूर्वक उल्लेख करते हैं किंतु वे भी विद्यापति को 'अतिलुब्ध-नगर-याचक' कहकर शिवसिंह से अपने मूल-ग्राम विसापी का दान स्वीकार करने के लिए ताना देने से नहीं चूकते। यह रुचिकर है कि आज भी मिथिला में दुर्गा-पूजा विद्यापति के द्वारा संकलित संहिता के अनुसार नहीं की जाती। स्पष्टतः विद्यापति के विचार अपने समय से बहुत आगे थे, इसलिए पुरातनपंथी पण्डित-वर्ग उन्हें उचित सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता था।

इस प्रकार विद्यापति के जीवन के चार स्पष्ट काल-खंड थे, प्रत्येक दूसरे से अलग था और उन्होंने जो ग्रंथ लिखे वे विशिष्ट काल-खंड के उनके जीवन को प्रतिबिंबित करते है। शुरू के २० वर्षों का पहला काल-खंड तैयारी करने का था और इस कालखंड के अंत में हम उन्हें देवसिंह के अनुचरों के बीच नैमिषारण्य मे पाते हैं। अगले ३६ वर्षों का, उनके पौरुष का काल-खंड शिवसिंह के दरबार में व्यतीत हुआ। यह उनके जीवन का सबसे सुखी काल था, जब उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा चरम-सीमा पर थी और उन्होंने वे ग्रंथ लिखे जिनके द्वारा उनका नाम अमर हो गया। स्वैच्छिक निष्कासन के अगले बारह वर्ष उनके जीवन के अन्ध-कारमय काल-खंड में आते हैं, जब उन्हें निराशा और ऊब की गहरी वेदना को चुपचाप सहन करना पड़ा। अंतिम २० वर्ष दरबार के वृद्ध राजनीतिज्ञ के रूप मे अपेक्षाकृत शांति से घर पर ही अध्ययन करते हुए और पवित्र ग्रंथों का संकलन करते हुए बिताए गए। जीवन के सारे भाग्य-परिवर्तन के समय, सुदिन और दुर्दिन में, एक काम ऐसा था जिसे वे कभी नहीं भूले, जिसे उन्होंने कभी बंद नहीं किया और जो था—लिखना। उनके ही शब्दों में कीर्तिलता के फैलने के लिए मंडप बनाने हेतु वे धैर्यपूर्वक निरंतर अक्षरदण्डों का निर्माण करते रहे।

विद्यापति ने दो पत्नियों से विवाह किया था। हालांकि हमे यह नही मालूम कि क्या उन्होने पहली के मरने के बाद दूसरी से विवाह किया था। उनकी पहली पत्नी से दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थी और दूसरी से एक पुत्र और दो पुत्रियाँ। उनका सबसे बड़ा बेटा हरपति किसी उत्तरवर्ती ओइनवर राजा के यहां मुद्रा काष्टक था और उसने ज्योतिष पर एक ग्रंथ 'दैवज्ञ-बान्धव' लिखा तथा उसके वंशज आज भी जीवित हैं, किन्तु बिसफी में नहीं, वल्कि सौराठ में जो मधुबनी के निकट अपनी वार्षिक विवाह-सभा के लिए प्रसिद्ध है, जहाँ अपने लड़के-लड़कियों की शादी तय करने के लिए लाखों मैथिल ब्राह्मण इकट्ठे होते हैं। विद्यापति के सातवं वंशज ठाकुर थे जिन्होंने पुरुष-परीक्षा की एक प्रतिलिपि

प्रति थी जो कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल के संग्रहालय में सुरक्षित है और जिस पर इस ग्रंथ का मेरा संस्करण आधारित है। कीलहार्न के अनुसार यह प्रतिलिपि लौ०स० ५०४ अर्थात् ईस्वी सन् १६१३ या १६२३ में बिनकी गाँव में तैयार की गयी थी, जहाँ से नारायण का पौत्र सौराठ को चला गया। आज जो सौराठ में है वे कवि की सोलहवीं पीढ़ी में आते हैं। पूरी मिथिला में अनेक सम्माननीय व्यक्ति अपने को विद्यापति का वंशज कहते हैं—उनकी तीन बेटियों से विशेषतः उनकी पहली पत्नी की बेटियों से।

मिथिला भर में विद्यापति के विषय में बहुत-से अचरज बताए जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव उगना का भेस धारण करके विद्यापति के सेवक बन गए थे, किंतु यह नाम ण सहित शुक्ल यजुर्वेद के प्रसिद्ध रुद्राध्याय में है जिससे भगवान् का उद्बोधन किया जाता है। ऐसा भी कहा जाता है कि गंगातट की अपनी अंतिम यात्रा के दौरान विद्यापति आगे नहीं बढ़ सके, किंतु रात के समय गंगा की धारा इस प्रकार बदल गयी कि उस जगह से बहने लगी, जहाँ विद्यापति अपनी अंतिम रात बिता रहे थे और फलस्वरूप प्रातःकाल विद्यापति ने अपने को गंगातट पर पाया और अपनी आखिरी सांस छोड़ दी। किंतु यह याद रखना चाहिए कि विद्यापति ने अपनी कहानी (पुरुषपरीक्षा की कहानी स० ३०) में कायस्थ बोधी के संबध में स्वय इस घटना का उल्लेख किया है। सच बात चाहे जो हो, मिथिला के लोगों के लिए विद्यापति महान् पुण्यात्मा थे और वस्तुतः लोग उन्हें पवित्रता का अवतार मानते थे जो अलौकिक शक्तियों से युक्त होने के कारण चाहे जैसे अचरज कर सकते थे।

उनके द्वारा लिखे हुए बताए जाने वाले एक गीत में कहा गया है कि विद्यापति ने शिवसिंह को लापता होने के ३२ वर्षो बाद सपने में देखा और वे संभवत आगामी कार्तिक की शुक्ल-पक्ष त्रयोदशी को दिवंगत हुए। जीवित रहते हुए अपनी मृत्यु की तिथि बताना एक मनुष्य के लिए बड़े अचरज की बात है; किंतु यह गीत किसी उत्तरवर्ती कवि का भी मान लिया जाए, तो भी यह काफी प्राचीन है और सामान्य जन इसे सही मानते हैं, जिस कारण कार्तिक शुक्ल-पक्ष त्रयोदशी को उनकी पुण्यतिथि माना जाता है और फलस्वरूप विद्यापति के प्रशंसकों द्वारा इस तिथि को 'विद्यापति दिवस' मनाया जाता है। कहा जाता है कि विद्यापति ने गंगा के किनारे उस स्थान पर अपनी अंतिम सांस छोड़ी थी, जहाँ आज पूर्वोत्तर रेल की हाजीपुर शाखा के बरौनी जंक्शन के अंतर्गत विद्यापति नगर रेलवे-स्टेशन है। इस प्रकार विद्यापति ने गंगातट पर अपनी अंतिम सांस छोड़कर अपने जीवन का चौथा लक्ष्य 'मोक्ष' प्राप्त कर लिया। उनका जीवन पूर्णत्व लिए हुए था, वस्तुतः वह एक सार्थक जीवन था जिसकी वे जिंदगी भर वकालत करते रहे थे और जो चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाने से सफल

हो गया था—यही थी 'सुपुरुष' की निश्चित पहचान।

६

ऐसे थे विद्यापति—एक व्यक्ति; किन्तु विद्यापति अमर हैं एक गीतकार के रूप में ऐसे सर्वप्रथम महान् कवि के रूप में जिसने उन्मादक लय और भव्य नाद से युक्त गीतों की रचना के लिए प्रादेशिक बोली का प्रयोग किया, जिस कारण भारतीय काव्य में एकदम नवीन अंतराल खुल गये। फिर भी मेरा हमेशा से यही दृष्टिकोण रहा है कि कवि के रूप में वे कितने ही महान् क्यों न रहे हों यह उनके व्यक्तित्व का ही एक अंश था और चूंकि अंश की अपेक्षा पूर्ण का ही ज्यादा महत्त्व होता है (अंश कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो); इसलिए कवि के रूप में उन्हें समझने और सराहने के लिए विद्यापति को एक व्यक्ति के रूप में जानना अत्यावश्यक है। वास्तव में यह विद्यापति की अद्वितीय प्रतिभा थी कि उन्होंने उस युग की नाड़ी को सही-सही पकड़ा, अपनी प्रतिभा की संभावनाओं को पहले से ही स्पष्ट रूप से समझा और एक नवीन प्रकार के काव्य की आधारशिला इतनी दृढ़ भूमि पर रखी कि वह आगामी शताब्दियों के कवियों के लिये अनुसरण व अनुकरण हेतु एक परंपरा बन गई; किंतु स्वयं विद्यापति अपने वंश, अपने प्रादेशिक वातावरण, अपने युग, अपने समाज और अपने परिवार के एक प्राणी थे क्योंकि इन्हीं से उनकी प्रतिभा ने आकार और दिशा ग्रहण की। कवि के मूल्यांकन में हम दिग्भ्रांत हो सकते हैं, यदि हम जिन सीमाओं के भीतर उन्हें काम करना पड़ा था उनसे पृथक् एकाकी रूप में कवि का अध्ययन करें और अपने उत्साह में हम उन पर ऐसी बातें भी थोप सकते हैं, जो विद्यापति कभी सपने में भी नहीं सोच सकते थे।

एक साधारण-सा उदाहरण लें। विद्यापति ने अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए उस समय बोली जाने वाली लोक-भाषा का प्रयोग किया; किंतु अपने गीतों के अतिरिक्त उसका उन्होंने कहीं प्रयोग नहीं किया। ऐतिहासिक रूमानी-काव्य कीर्तिलता और कीर्तिपताका में, साथ ही शिवसिंह के अभिषेक और विजय के अपने गीतों में, जो मूलतः कीर्तिपताका के लिए लिखे गये होंगे—उन्होंने उस भाषा का प्रयोग किया जो सुदूर अतीत से बोली जाती रही होगी और प्रयोग द्वारा सर्वमान्य थी। जब कीर्तिलता[1] में विद्यापति कहते हैं, "विद्यापति की भाषा नूतन चंद्रकला के समान है, जो भगवान् शिव के मस्तक को विभूषित करती है और कविता-प्रेमियों के मन को उन्मत्त कर देती है," तब उनके गीतों में प्रयुक्त

१ कीर्तिलता, १।५।

लोकभाषा के पुराणपंथी आलोचकों के आक्रमण के विरुद्ध उनका बचाव हमें सुनाई पड़ता है। किंतु विद्यापति ने अपने नाटक के गीतों में ही मैथिली का प्रयोग किया था और लिखनावली में वे सभी प्रारूप, अक्षर, विधिपत्र व दूसरे दस्तावेज संस्कृत में ही बतलाते हैं, न कि मैथिली में जो कि अधिक उपयोगी व वांछनीय होता। किंतु हमें याद रखना चाहिए कि उस समय साक्षरता संस्कृतप्रेमी पुराण-पंथी-वर्ग तक ही सीमित थी और स्त्रियों में वह नगण्य थी। विद्यापति ने अपने गीतों में मैथिली का प्रयोग इसलिए किया कि ये गीत पढ़े जाने के लिए नहीं लिखे गये थे, बल्कि गाये जाने के लिए, सुने जाने के लिए और कंठस्थ किये जाने के लिए लिखे गये थे। विद्यापति के गीतों में भी हम दो प्रकार की मैथिली बोली पाते हैं। कुछ गीत ऐसे है, जो राजसभा और उच्च-वर्ग की संमार्जित बोली में लिखे गये हैं, जिनमें तत्सम शब्दों का प्राधान्य है और बिम्बावली अलकारों की शृंखलाओं से सुसज्जित है। दूसरे गीत ऐसे हैं, जो तद्भव या देशी शब्दों के बाहुल्य से युक्त सरल, सीधी और घरेलू भाषा मे लिखे गये हैं। स्पष्टतः जिन श्रोताओं के लिये गीत लिखे गये थे, उनके सांस्कृतिक धरातल के अनुसार विद्यापति ने भाषा का चुनाव किया और तत्कालीन स्त्री-पुरुषों तक पहुँचने के लिए उनके गीतों को निम्नलिखित में से किसी एक दरवाजे में से होकर जाना पडता—राजसभा या राजसभा-मंडली के द्वारा, अपने परिजनों के द्वारा या अपने मित्रों और प्रशंसकों के घरों के द्वारा। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि विद्यापति ने विशिष्ट श्रोता-वर्ग से अलग-थलग स्वयं अपने लिए ही गीत लिखे थे। बाद में जब एक गीतकार के रूप में उनकी ख्याति फैल गयी, तब राजा शिवसिंह ने जयत नामक एक युवा संगीतकार को इस बात के लिए नियुक्त किया कि वह कवि से उनके गीत प्राप्त करे, उन्हें संगीत में ढाले और उपयुक्त अवसरों पर राजसभा में या अन्यत्र उन्हे प्रस्तुत करे। विद्यापति के गीतों के विषय में यही मौलिक तथ्य है और जब हम इस दृष्टिकोण से उन्हें देखेंगे तभी उन्हे समझ सकेंगे और उनका मूल्यांकन कर सकेंगे।

और इसी कारण-वश, विद्यापति के गीतों के अध्ययन के समय सबसे बड़ी समस्या विद्यापति के नाम से उद्धृत गीत की प्रामाणिकता के विषय में उठती है। इसका निराकरण सामान्यतः गीत के अंतिम चरण भणित मे कवि के नाम की उपस्थिति से किया जाता है, जो इन गीतों की विशेषता है; किंतु सदियों तक मुखाग्र प्रचार-प्रसार होने के कारण, विशेषतः स्त्री-जन प्रमुख अविशेषज्ञ गाने वालों के कारण, ये भणित भ्रमपूर्ण, विस्थापित और समायोजित हैं। साथ ही सभी गीतों में भणित नहीं मिलते। कई संकलनों में, विशेषतः नेपाल में, जगह की कमी के कारण भणित छोड़ दिए गये हैं। १८वीं सदी तक के पीछे के विद्वानों द्वारा संकलित संग्रहों में ऐसी भ्रांतियाँ हैं जो चकरा देने वाली हैं। मिथिला मे

विद्यापति का नाम अंत में जोड़ देने की प्रथा अभी [illegible] सर्वमान्य है। कई छोटे कवियों ने भी अपने गीतों के अंत में जानबूझकर विद्यापति का नाम दे दिया है, जिससे कि कवि-गुरु की रचना की प्रसिद्धि उन्हें मिल सके। बंगाल में कम से कम एक कवि ने अपने सभी गीत विद्यापति के नाम से लिखे थे।

इसीलिए अभी तक विद्यापति के गीतों का कोई संपूर्ण संग्रह नहीं बनाया जा सका है और इसका बनाया जाना भी संदेहास्पद है। विद्यापति ने अपने गीतों को कभी संकलित नहीं किया। उनके गीतों का मिथिला, बंगाल, नेपाल आदि में मौखिक प्रचार-प्रसार होता रहा। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास बंगाल में किया गया, जहाँ भगवान् कृष्ण और गोपियों की लीलाओं का वर्णन करने के कारण इन पदों को वैष्णव संकलनों में सावधानी से सुरक्षित रखा गया। पटना के डॉ० बी० बी० मजूमदार ने इन पदों का सर्वाधिक आलोचनात्मक और सर्वाधिक विस्तृत संस्करण तैयार किया। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद भी विद्यापति के पदों के संग्रहों को निकालती रही है। मेरे मित्र डॉ० सुभद्र झा ने नेपाल की एक प्राचीन ताड़-पत्र पांडुलिपि में सुरक्षित इन गीतों का एक बहुमूल्य संग्रह निकाला और इससे पूर्व श्री शिवनंदन ठाकुर ने मिथिला में प्राप्त एक पांडुलिपि पर आधारित एक संग्रह प्रकाशित किया था। १८वीं सदी के मध्य में लोचन के द्वारा संकलित रागतरंगिणी नामक मैथिली-संगीत की एक पुस्तक में विद्यापति के ५३ गीत हैं और मैंने भाषा-गीत-संग्रह नामक नेपाल की एक पांडुलिपि प्रकाशित की है जिसमें विद्यापति के ७७ गीत हैं, जिनमें ३७ बिल्कुल नए हैं। किंतु इन सभी के बावजूद गीतों की संख्या समाप्त नहीं हो जाती। मुझे मिथिला में दो पांडुलिपियाँ मिलीं, जिनमें ३०० गीत थे, इनमें से लगभग ८० अभी तक प्रकाशित नहीं हैं और इस समय मैं पटना विश्वविद्यालय के मैथिली विकासकोष हेतु इस मिथिला-पदावली का आलोचनात्मक संस्करण तैयार कर रहा हूं। किंतु इनमें से अधिकांश संग्रह भ्रष्ट पाठों के कारण दूषित हैं, अपवादस्वरूप भाषा-गीत-संग्रह को छोड़कर जो २०० वर्षों से भी पहले एक पंडित के द्वारा अत्यंत सावधानीपूर्वक तैयार किया गया था, कारण स्पष्ट है, ये सभी संग्रह या तो उन व्यक्तियों के द्वारा तैयार किये गए थे, जो मैथिली नहीं बोलते थे या जो इतने विद्वान् नहीं थे कि लिखी जाने वाली बातों को समझ सकें। इसलिए मेरा यह विचार है कि विद्यापति के गीतों का वैज्ञानिक अध्ययन तभी सम्भव है जब गीतों की प्रामाणिकता और पाठों की शुद्धता निश्चित हो जावे।

हम यह नहीं जानते कि विद्यापति ने इन गीतों को लिखना कब प्रारंभ किया। भणित के आधार पर कई लोगों के द्वारा निर्दिष्ट सर्वप्रथम गीत वह है, जिसमें राजा भोगीश्वर का नाम है और जो कंदर्प-पूजा से संबंधित है (गीत क्र० ८५०), किन्तु यह प्रत्यक्षतः हास्यास्पद है। विद्यापति उस समय १२ वर्षों से

अधिक के नहीं थे जब लौ० सं० २५२ में भोगीश्वर के पुत्र गणेश्वर की हत्या की गई थी। इस बात पर कैसे विश्वास किया जा सकता है कि लगभग १० वर्ष की उम्र में ही विद्यापति ने विरहिणी के शोक का वर्णन करने वाले घोर शृंगारपूर्ण गीत की रचना की थी और उसे अपने पितामह की उम्र वाले राजा भोगीश्वर से संबद्ध किया था ? अपनी प्रथम संस्कृतकृति भूपरिक्रमा में विद्यापति प्रेम के विषय में चर्चा नहीं करते; किंतु पुरुषपरीक्षा के उत्तरवर्ती खंडों में प्रेम प्रमुख विषय है, भले ही कहानियों का उद्देश्य पुरुषों के अन्य लक्षणों का उदाहरण देना हो। एक सुसंस्कृत परिवार की अनुशासित संतान के अनुरूप विद्यापति ने किशोरावस्था समाप्त होने पर और युवावस्था में प्रवेश करने पर ही प्रेम पर लिखना शुरू किया था।

विद्यापति के गीत तीन श्रेणियों में बँटे हैं, प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं भाषा ही इन तीनों में एक समान है जो कि वह भाषा है, जो उस समय के मैथिल स्त्री-पुरुषों के द्वारा वस्तुतः बोली जाती थी। इनमें से सर्वाधिक लोकप्रिय गीत वे हैं, जिन्होंने सदियों तक विद्यापति को मैथिल-स्त्रियों के कंठ में जीवित रखा है और जो मिथिला में किसी भी शुभ कार्य के प्रारंभ में किये जाने वाले कुल देवता के मंगलाचरण सहित अन्य सामाजिक कार्यों के लिए उपयुक्त हैं। तत्पश्चात् शिव के विवाह और पारिवारिक जीवन का वर्णन करने वाले गीतों सहित शिव-भक्ति से संबंधित गीत हैं। विद्यापति ने नचारी नामक इस प्रकार के नये गीतों का निर्माण किया जो इतने लोकप्रिय हुए और इतने विख्यात हुए कि जौनपुर के एक कवि ने विद्यापति की उनके निर्माता के रूप में स्तुति की और आईने-अकबरी[1] में अबुल फजल विद्यापति के सभी गीतों को, यहाँ तक कि उत्कट प्रेम-भावना को चित्रित करने वाले गीतों को भी, 'नचारी' के सामान्य नाम से पुकारते हैं। ये गीत आज भी सारे देश के शिव भक्तों में लोकप्रिय हैं और प्रति दिन किसी भी शिव-मंदिर में सुने जा सकते हैं। अंतिम, किंतु विद्यापति की कीर्ति के महत्त्वपूर्ण आधारस्तंभ, वे गीत हैं जिनमें शृंगार के विभिन्न रूप-रूपांतरों, भावों और दशाओं का चित्रण है, कुछ का संबंध कृष्ण और गोपियों से है एवं कुछ का सामान्य नर-नारियों से।

विद्यापति के गीतात्मक उद्‌गारों की विभिन्न श्रेणियों का अध्ययन करने से पहले उस पृष्ठभूमि को बतलाना प्रसंगानुकूल होगा, जिसमें ये उद्‌गार प्रवाहित हुए और प्रयोग सफल हुआ। सदियों तक विद्यापति को जिन उपाधियों से विभूषित किया गया है उनमें से दो ऐसी हैं, जो उनके नाटक गोरक्षविजय द्वारा, बिसफी-दान के ताम्र-पत्र द्वारा, परंपरा द्वारा और सबसे बढ़कर उनके प्रामाणिक

---

१ ग्लैडविन का अनुवाद, जगदीश मुखोपाध्याय द्वारा संपादित, पृ० ७३०।

गीतों के भणितों के द्वारा अभिप्रमाणित हैं। विद्यापति को उनके जीवनकाल में ही 'अभिनव जयदेव' और 'कविकंठहार' कहा गया था। विद्यापति से संबद्ध अनेक उपाधियों की विस्तृत विवेचना करने वाले डॉ० बी० बी० मजूमदार इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये दो उपाधियाँ ही वास्तव में उनकी थीं और केवल उनकी थी। ये दोनों उपाधियाँ सार्थक है और यदि हम उनके अर्थ का विश्लेषण और मूल्यांकन करें तो हमें स्पष्टतः दृष्टिगोचर होंगे वे आदर्श जिन्होंने कवि को प्रयोग करने के लिये उत्प्रेरित किया और वे आनंद, उन्माद जिनके द्वारा इस प्रयोग ने सभी श्रोताओं के मन को मंत्रमुग्ध कर दिया।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है, जिसे बार-बार दुहराने की आवश्यकता नहीं है, कि विद्यापति के मंच पर आने के शताब्दियों पहले से ही सारे पूर्वोत्तर भारत में, और विशेषत, मिथिला में, दो काव्य-धाराएँ साथ-साथ बह रही थी। ये दोनों धाराएँ मनोरंजनात्मक थी, न कि उपदेशात्मक। इनमें से एक सुदूर अतीत से चली आई हुई लौकिक संस्कृत की काव्यधारा थी, जिसका प्रमुख प्रतिनिधि अमरुशतक है, जिसके विषय में कहा गया है कि इसका एक पद्य एक सौ संहिताओं के बराबर है। यह काव्य-धारा संस्कृत की थी, संस्कृत अलंकारशास्त्र पर आधारित थी, संस्कृत-कवियों के द्वारा संस्कृत-छंदों में रची गई थी और सारे देश के सुसंस्कृत समाज व विभिन्न राज-दरबारों के द्वारा संरक्षित थी। सारे भारत की राष्ट्र-भाषा संस्कृत होने के कारण इस काव्य-धारा का एक सार्वदेशिक प्रभाव था, यद्यपि यह उस वर्ग तक ही सीमित था जिसे संस्कृत का ज्ञान था। यह काव्य-धारा गीतमयी थी और अधिकांशतः शृंगारपूर्ण थी, यद्यपि स्तुत्यात्मक और भक्तिपूर्ण गीतों का भी प्रचलन था। दूसरी काव्यधारा क्षेत्रीय बोलियों की काव्य रचना थी, जो प्रचलन द्वारा परिमार्जित थी और जिसका प्रथम प्रतिनिधित्व गाथासप्तशती करती है, किंतु जो कालिदास के विक्रमोर्वशीय के चर्चरि नृत्यगीतों से लेकर पाल-कालीन वज्रयान सिद्धों के गीतों तक आर्यावर्त के पूर्वी क्षेत्र में विकसित हुई और जिसका एक संग्रह 'बौद्ध गान ओ दोहा' नाम से प्रकाशित हुआ है, जिनकी विशेषता यह है कि ये सब आर्यावर्त के इस क्षेत्र के लिये विशिष्ट किसी न किसी राग में रचे गये हैं और अंत में कवि के नाम का उल्लेख करते हैं जिसे बाद में भणित कहा गया।

जयदेव ऐसे प्रथम कवि थे जिन्होंने दोनों काव्यधाराओं को मिलाने का प्रयत्न किया और एक नये प्रकार के संस्कृत-काव्य का निर्माण किया। भाषा संस्कृत ही थी; विषय वस्तु थी, श्रीमद्भागवत में चित्रित कृष्ण की लीलाएँ (यद्यपि ये लीलाएँ गाथाओं के समय से ही प्राकृत-काव्य में समायोजित हो गयी थीं)। रीति और प्रवृत्तियाँ वे ही थीं जो लौकिक संस्कृत काव्य की थीं। केवल लोक-गीतों के रचना-तंत्र का उपयोग किया गया था। ये गीत गाने जाने के लिए थे,

क्षेत्रीय रागों में रचित थे और संस्कृत-काव्य में सबसे पहले भणित का उपयोग किया गया था। इस नये काव्य में सच्ची कविता और उन्मादक लय का इतना आनंददायक मेल हुआ कि यह तुरंत लोकप्रिय हो गया और आज भी लोग गीत गोविन्द के गीतों की ललित रचना और मधुर लय के द्वारा, अर्थ को समझे बिना भी, उल्लसित हो जाते हैं।

कर्णाटों के आगमन के साथ ही, मिथिला में संगीत और नृत्य को महती प्रेरणा मिली और ज्योतिरीश्वर के वर्णरत्नाकर से हमें ज्ञात होता है कि तत्कालीन सामाजिक जीवन में उनका कितना महत्त्वपूर्ण स्थान था। गीत मिथिला के जीवन का एक अभिन्न अंग बन गये और आज भी हैं तथा मैथिल घर में ऐसा कोई भी धार्मिक, सामाजिक या सामयिक उत्सव नहीं है, जिसके लिए विशेष धुनों वाले गीत नही हैं।

विद्यापति ने जयदेव से संकेत ग्रहण किया। पाल-युग से चली आई हुई लोक-गीतों की रचना-विधि को उन्होंने ग्रहण किया, जिसे जयदेव ने लगभग दो सौ वर्षों पूर्व स्वीकार किया था। भाषा उन्होंने वही रखी जो उस समय बोली जाती थी, न कि उसका प्रयोग द्वारा सम्मार्जित रूप, जो उन्होंने स्वयं कभी-कभी, विशेषतः ऐतिहासिक रूमानी काव्यों में प्रयुक्त किया था। किन्तु विषयवस्तु उन्होंने रीति आदि के साथ लौकिक संस्कृत-काव्य से ली। काव्य की दोनो धाराओं का सच्चा मेल हुआ। आधुनिकीकरण की दिशा में वे जयदेव से भी एक कदम आगे बढ गये और संस्कृत-काव्य के आनंद को उनके लिये भी सुलभ कर दिया जो संस्कृत नहीं जानते थे। विद्यापति की रचनाओं में ध्वनि और अर्थ दोनों सामान्य स्त्री-पुरुषों को प्रभावित करते हैं, केवल ध्वनि नही। इसी अर्थ मे विद्यापति अभिनव जयदेव थे, क्योंकि जयदेव की नई शैली ने केवल ध्वनि-तत्त्व को लोकप्रिय बनाया, किन्तु विद्यापति ने ध्वनि और अर्थ दोनों को लोकप्रिय बनाकर वास्तव में आधुनिकीकरण कर दिया।

मैथिली काव्य के आकाश में विद्यापति देदीप्यमान सूर्य के समान थे, जिनके दीप्तिपूर्ण उदय के साथ ही छोटे-छोटे ग्रह और तारे अदृश्य हो गए। उनके पूर्वगामियों की सभी रचनाएँ, उनके समसामयिकों की अधिकांश रचनाएँ और उनके उत्तरवर्तियों की भी कुछ रचनाएँ, कलाप्रेमियों में मौखिक प्रचारित-प्रसारित होती हुई, नष्ट हो गईं अथवा वे शायद आज भी विद्यमान हों, केवल भणित में लेखक के नाम की जगह विद्यापति का नाम हो गया हो। हम कल्पना कर सकते हैं कि विद्यापति का कंठ मधुर था और वे गाने में निपुण थे। अपने परिवार की स्त्रियों के द्वारा गाए जाने वाले गीतों को सुनकर अपनी किशोरावस्था मे ही वे गीत रचते होंगे और गाने के लिए स्त्रियों को देते होंगे। इसलिए प्रारंभ मे उन्होंने सामाजिक उत्सवों से संबंधित गीत ही रचे होंगे और फिर युवावस्था मे

प्रवेश करने पर अपने मित्रों के लिए, अपने मित्रों की पत्नियों के लिए तथा स्वयं अपनी पत्नी के लिए श्रृंगार-रस-पूर्ण गीत लिखे होंगे, जो निजी रूप में प्रसारित होते रहे होंगे। कम से कम प्रारंभ में, विद्यापति ने अपने अधिकांश गीत स्त्रियों के लिए लिखे होंगे, जिन्हें गीत गाने पड़ते थे और इस कारण जिन्हें गीतों की आवश्यकता थी। विद्यापति एक व्यावसायिक कवि नहीं थे, वे एक राज-दरबारी थे और जब उनकी कीर्ति फैल गयी तब वे राजा के लिए गीत रचने लगे; किंतु यहाँ भी रानियाँ ही उनके गीतों को उत्सुकतापूर्वक सीखती थीं और सोत्साह उनकी माँग करती थीं क्योंकि पुरुष तो इन गीतों का आनंद संस्कृत काव्य के द्वारा भी पा लेते थे; साथ ही इन गीतों में सन्निहित काव्यानंद के उन्माद की एक बार अनुभूति पा लेने पर स्त्रियों को उतने ही गीतों से संतोष नहीं होता होगा जितने विद्यापति देते होंगे बल्कि वे और अधिक गीत मांगती होंगी। स्त्री के हृदय की विद्यापति को अद्भुत जानकारी थी और वे स्त्री की गुप्त भावनाओं को इतनी प्रामाणिकता से, यथार्थता से और अनुभूतिपूर्वक चित्रित करते थे कि स्त्रियाँ उनमें स्वयं का चित्रण पाती थीं। इसलिए इन गीतों को सीखने वाली और मौखिक रूप से प्रसारित करने वाली स्त्रियाँ ही थीं, जब तक कि कोई व्यक्ति उन्हें पुस्तिका में लिख नहीं लेता था। कुछ दिनों पहले तक मिथिला के प्रत्येक सुसंस्कृत परिवार की एक निजी गीत-पुस्तिका होती थी और इन गीतों के आधुनिक संस्करण अधिकांशतः इन पारिवारिक गीत-पुस्तिकाओं में ही तैयार किए गए हैं। विद्यापति ने शायद ही कभी कोई गीत पुस्तकबद्ध किया हो, अभी तक कवि के हाथ से लिखा गया कोई गीत नहीं मिला है और न उसके बारे में सुना गया है। और चूँकि ये गीत, आज के समान ही, इन गीतों के प्रेमियों के कंठ के आभूषण थे, विद्यापति को प्रेमपूर्वक और ठीक ही कविकंठहार कहा गया है।

७

ये व्यवहार-गीत, जैसा कि केवल सामाजिक उत्सवों पर गाए जाने वाले गीतों को कहा जाता है, उतने ही प्रकार के हैं, जितने उत्सव होते हैं और प्रत्येक प्रकार की अपनी एक धुन होती है। ये गीत बहुत लोकप्रिय और इस कारण अत्यधिक प्रचारित-प्रसारित रहे हैं एवं लिखित रूप में बहुत कम मिलते हैं। इसलिए इन गीतों की प्रामाणिकता भी अत्यधिक संदेहास्पद है। मैथिल-घर के प्रत्येक उत्सव के आरंभ में की जाने वाली देवी की स्तुति के कुछ भक्ति-गीत, विवाह के समय गाए जाने वाले शिवविवाहसंबंधी कुछ गीत और कुछ उचिती गीत जो वधू के साथ कोमल व्यवहार करने और उसके दोषों को क्षमा करने के

निवेदनस्वरूप वधू-परिवार की स्त्रियों के द्वारा वर को उद्दिष्ट करके गाए जाते हैं, ही अपवाद के रूप में आने वाले गीत हैं और इन्हें छोड़कर कोई भी दूसरे उत्सव-गीत प्रामाणिक रूप से विद्यापति-रचित कहे जाने योग्य नहीं हैं और न ही किसी प्राचीन विश्वसनीय संग्रह में उपलब्ध है। कुछ लोगों को तो यह भी संदेह है कि सामान्यतः विद्यापति-रचित कहे जाने वाले गीत शायद ही विद्यापति ने लिखे हों। ऐसा ही एक गीत मुझे एक ताड़-पत्र[1] पर मिला है जो ४०० वर्षों से कम पुराना नहीं है। यह एक विशिष्ट व्यवहार-गीत है और ऐसे ही अनेक गीतों का प्रतिनिधि-स्वरूप है, जो विवाह की तिथि के बाद, या और भी बाद पूरे वर्ष-भर भोजन के समय वर को उद्दिष्ट करके मिथिला भर में गाए जाते हैं। जोग नामक ये गीत मंत्र-तंत्र के उन तरीकों को बतलाते हैं जिनके द्वारा पति नववधू के वश में हो जाए। इस प्रकार के गीतों का मूलतत्त्व विद्यापति ने इस प्रकार वर्णित किया है "हे मेरी बेटी, सावधानी से सुनो यह मंत्र जिसके द्वारा तुम्हारा (नवविवाहित) पति दूसरी (लड़की) के प्रभाव में नहीं आ पाएगा" और तब फिर वर्णित है जड़ी-बूटियों का शर्बत तैयार करने, धूप जलाने, आँखों में विशेष काजल लगाने आदि की विधियाँ जो स्त्री द्वारा पुरुष को वश में करने के लिए कामशास्त्र के किसी भी ग्रंथ में सामान्यतः बतलायी जाती है। केवल विलक्षणता की दृष्टि से इसकी तुलना शेक्सपियर के मैकबेथ के 'जादुई-गीत' से की जा सकती है।

यह अत्यंत खेद की बात है कि इन गीतों पर उतना ध्यान नहीं दिया गया, जितना देना चाहिए। अंशतः, यह उनकी अनुपलब्धि के कारण है और अंशतः इस कारण कि क्षेत्र-विशेष के सामाजिक जीवन से जुड़े रहने के कारण इनका मजा सामाजिक पृष्ठभूमि में ही लिया जा सकता है। इन सामाजिक उत्सवों में से प्रत्येक के विशिष्ट विधि-विधान हैं और यद्यपि उनका कहीं उल्लेख नहीं है, वे उत्सव की अधिष्ठात्री महिलाओं को ज्ञात रहते हैं। इन विधि-विधानों का इन गीतों में वर्णन है, इसलिए ये मार्ग-दर्शक का कार्य करते हैं। रचे जाने के समय इन गीतों में उत्सव से संबंधित विभिन्न विधि-विधान, प्रयोग आदि का समावेश कर दिया गया था और प्रसारित होते समय ये गीत नई पीढ़ी के लिए पाठ का भी काम देते रहे। इस प्रकार इन गीतों ने स्त्रियों के कंठ में उत्सव-विशेष को जीवित रखा और उन्हें विस्मृत होने या विभ्रांत होने से बचा लिया। इस प्रकार इन्होंने सामाजिक समारोहों को एक अविच्छिन्न परंपरा प्रदान की, उनके लिए एक मानदंड बनाया और उनमें समरूपता उत्पन्न की। इसलिए इनका अपना एक

१ सम अनपब्लिश्ड मैथिली सॉन्ग्ज (कुछ अप्रकाशित मैथिली गीत) : गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट जर्नल, खंड २, भाग ४, पृ० ४०८, अगस्त १९४५।

सांस्कृतिक महत्त्व है। काव्य की दृष्टि से ये सरल, रसीले और आलंकारिकता-रहित सीधे-सादे हैं। ये सर्वसाधारण भावनाओं और मनोवेगों को उद्दीप्त करते हैं एवं सामान्य व सुसंस्कृत दोनों प्रकार के व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं क्योंकि उत्सव तो दोनों के लिए एक समान महत्त्वपूर्ण होते हैं। ऐसे हैं ये गीत यज्ञोपवीत-संस्कार के समय गाए जाने के योग्य, जबकि बालक के द्विजत्व में दीक्षित होने समय पूर्वजों के आनंद का वर्णन किया जाता है; विवाहित वधू के ससुराल में जाने के समय गाए जाने वाले (समदाउन नामक) गीत जिनमें बिदाई की करुणा सन्निहित रहती है; सोहर नामक गीत जो पुत्र-जन्म के समय, यदा-कदा पुत्री-जन्म के समय, गाए जाते हैं और जिनमें कुटुंबियों के हर्षोल्लास का चित्रण होता है विशेषतः बुआ (फूफी) का जो भाई-भाभी पर, खासकर भाभी पर, उपहार देने के लिए दबाव डालती है; मल्हार या पावस नामक वर्षा-गीत जो उन नव-वधुओं के दुःख का वर्णन करते हैं जिनके पति विदेश गए हैं, और जो झूला झूलकर अपना मन बहलाती हैं। ये हैं वे भावनाएँ जो समाज के हर सदस्य में विद्यमान हैं, वे अनुभूतियाँ जो सभी में बंटी रहती हैं। प्रत्येक के लिए विशिष्ट मनमोहक संगीत सहित सरल, रसीले व मधुर शब्दों में अभिव्यक्त किए जाने के कारण ये गीत महिलाओं को उत्स्फूर्त कर देते थे, उस समय भी और आज भी. और विद्यापति के समय से लेकर आज तक सैकड़ों कवियों के द्वारा ऐसे हजारों गीत लिखे गए हैं; किंतु ये सब कविगुरु के द्वारा निश्चित नमूने पर ही हैं।

विद्यापति के शिवगीत भी कुछ कम लोकप्रिय नहीं हैं, विशेषकर इनमें से हिमगिरि की पुत्री से शिव के विवाह का वर्णन करने वाले वे गीत, जिन्हें मिथिला की स्त्रियाँ विवाह-गीत मानती हैं। उन्होंने शिवभक्ति से संबंधित अनेक गीत एक विशेष धुन पर रचे हैं, जो शिव-भक्त डमरू बजा-बजाकर नाचते हुए गाते हैं और जिन्हें नचारी कहते हैं। नचारी की विशेषता उसकी विषयवस्तु नहीं है, बल्कि उसकी विशिष्ट धुन है। कोई भी किसी भी शिव-मंदिर में शिव-भक्त को नचारी गाते हुए सोन्माद नाचते हुए देख सकता है। मिथिला प्रायः शैव है और शाक्त-जन भी शिव का सम्मान करते हैं। विद्यापति के शिव-गीतों के कारण लोग उन्हें शैव मानते हैं और इस प्रकार की अद्भुत कहानियों में विश्वास करते हैं कि उगना नामक सेवक का वेश धारण कर शिव विद्यापति के सम्मुख उपस्थित हुए थे।

विषयवस्तु की दृष्टि से विद्यापति के शिव-गीत तीन प्रकार के हैं। शिव की स्तुति में लिखे गए गीत अनुभूति में इतने निष्कपट, स्वर में इतने अनुतापी, प्रवृत्ति में इतने समर्पणात्मक, अभिव्यक्ति में इतने सरल, रचना में इतने मधुर और धुन में इतने मोहक हैं कि वे सर्वत्र लोकप्रिय हैं, विशेषतः इसलिए भी कि वर्ण और लिंग के भेदभाव बिना सभी हिन्दू शिव की उपासना कर सकते हैं।

'हे भोलानाथ, आप मेरे दुःखों को कब दूर करेंगे'' ?[1] या ''मैं कैसे इस जीवन के पार उतरूँगा ? जीवन-रूपी सागर का कोई अंत नजर नही आता, हे भैरव, तुम्हीं मेरी पतवार सम्हालो''[2] ये हैं कुछ लोकप्रिय गीत जो हर एक के हृदय मे करुणा का संचार कर देते है, जब वह अपनी असहाय अवस्था पर विचार करता है। अपने कई गीतों में विद्यापति ने शिव के जीवन, दर्शन और कार्यो की असमानताओं का चित्रण किया है जो कि अत्यधिक हास्यास्पद हैं। कहते है कि शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया था; किंतु (अर्धनारीश्वर के रूप में) अपनी पत्नी गौरी को अपने आधे शरीर से जोड़ लिया था। इसी बात को इंगित करते हुए पार्वती की एक सहेली शिव से पूछती है[3], ''हे परोपकारी शंभु, हे शिवशंभु, हे कामदेव को भस्म करने वाले, यह क्या कि एक तरफ तो आपकी दाढ़ी-मूँछे हैं और दूसरी तरफ स्तन—कैसा सुंदर मेल है ? सचमुच, गौरी के सुंदर गुणो को धारण करने की उत्कट अभिलाषा के कारण आपने उसे अपने शरीर मे ही समा लिया, इससे उत्पन्न होने वाली अपकीर्ति की ओर ध्यान दिए बिना''।

दूसरे स्थान पर वे गीत है, जिनमें शिव-पार्वती के विवाह के विभिन्न भागो का वर्णन है। पाँच सिर और तीन आँखों वाले, तीसरी आंख में प्रच्छन्न अग्नि जलती हुई, जटाजूट से गंगा बहती हुई, मस्तक पर चंद्रकला चमकती हुई, श्मशान की भस्म सारे शरीर पर लपेटे हुए, केवल हस्तिचर्म पहने हुए, साड पर बैठे हुए, गर्दन और हाथों पर साप डाले हुए, हठपूर्वक विषपान करने के कारण नीले कंठ वाले, भूत-प्रेत, पिशाच आदि विचित्र गणों वाले थे भगवान् शंकर और इसलिए पर्वतराज की सुकुमार, सुंदर बेटी के लिए योग्य वर नहीं बन सकते थे। कालिदास अपने कुमारसंभव में वर्णन करते है कि किस प्रकार भगवान् शिव ब्राह्मण बटु का वेश धारण करके उस समय पार्वती के पास गये जब वह शिव को पति रूप में पाने के लिए उग्र तपस्या कर रही थी और पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए उसे इस असमान मेल की अभिलापा करने से मना करते है। एक बूढ़े, कुरूप, पागल साधु के रूप में शिव की निंदा करते हुए, बटु बतलाता है कि किस प्रकार शिव में उन गुणों का अभाव है जो कि किसी भी कन्या के वर मे अपेक्षित हैं, विशेषतः राजकुमारी के वर मे। विद्यापति ने कालिदास से संकेत ग्रहण किया और जो बात कालिदास ने सात पद्यों[4] में बतलायी है, उसे विद्यापति ने तानों से भरे हुए दर्जनों गीतों में आक्षेप के

---

१ पदावली, बेनीपुरी द्वारा संपादित, क्र० २४३।

२ तत्रैव, क्र० २३६।

३ हरगौरी : एन० गुप्त का संस्करण, क्र० १६।

४ कुमारसंभव सर्ग ५ पद्य ६६ ७२।

विभिन्न रूपों सहित विभिन्न व्यक्तियों के मुख से कहलवाया है ; कभी पार्वती की माता के मुख से, कभी सखियों के और कभी सखियों के परिवार की महिलाओं के मुख से, किंतु सर्वदा शिव के व्यक्तित्व, उनकी आयु, उनके सदर्शन, उनके गुण और उनके सहचरों की निंदा करते हुए। पार्वती की माता[1] कहती है, "जो पैदा होने के बाद से ही घर-घर भीख मांगता रहा है, वह विवाह के विषय मे कैसे सोच सकता है और फिर वह गौरी का दूल्हा बने—यह असह्य है" अथवा उसे "शंकर (शांति-दाता) नाम किसने दिया जिसके पाँच सिर हैं, जिसने पुर-दैत्य का नाश किया, जिसका रूप प्रोज्ज्वल तीसरी आँख सहित तीन नेत्रों के कारण भयानक है और जिसके वंश के विषय में किसी को पता नहीं" आदि आदि[2]।एक पड़ोसिन कहती है "हे सखि, हिमवान् कैसा पागल दूल्हा घर लाये है...सोचकर ही मूर्छा आ जाती है। पागल बूढ़ा घोड़े पर नही चढ़ता, घोड़ा कितना ही अच्छा क्यों न सजा हो" आदि[3]। किना व्यंग्य है इनमें जब हम याद करते हैं कि मिथिला में आज भी मध्यस्थ की सहायता से पिता वर को खोजता है और विवाह के लिए घर ले कर आता है और इन गीतों मे मध्यस्थ के रूप में नारद ही इतना असमान वर खोजने के लिए स्त्रियों के आक्रमण का लक्ष्य बनते हैं। यही है वह सामाजिक पृष्ठभूमि जिसमें मिथिला की स्त्रियों पर इन गीतों का चिरस्थायी व्यापक प्रभाव पड़ा है।

और जब शिव विवाह के लिए आते हैं, तब उनका व्यक्तित्व, उनकी वेश-भूषा और उनके सहचर काफी भ्रम और मनोरंजन उत्पन्न करते हैं। शास्त्रसम्मत वैदिक विधि-विधानों के अतिरिक्त विवाह में अनेक ऐसे विधि-विधान होते हैं, जिन्हें महिलाएँ संपन्न करती हैं और विद्यापति के उन गीतों मे अनेक स्थानीय विधि-विधान मानक बन चुके हैं जो शताब्दियों से मिथिला में गाये जा रहे हैं। स्त्रियाँ दूल्हे का स्वागत करने के लिए आगे बढ़ती है किंतु वे लजाकर पीछे हट जाती हैं जब वे देखती हैं कि दूल्हा तो अधनंगा केवल हस्तिचर्म पहने हुए है। उन्हें दूल्हे की गर्दन पर लपेटे हुए वस्त्र का छोर पकड़ना था, किंतु शिव की गर्दन के चारों ओर लिपटे हुए साँपों की फुफकार से वे डर जाती है। उन्हें दूल्हे की आँखों में काजल लगाना था किंतु तीसरी आँख की जलती हुई अग्नि से उनका हाथ जल जाता हैं। विधि-विधान करने के लिए एकत्र

---

१. हरगौरी, क्र० १४।
२. भाषा-गीत-संग्रह, परिशिष्ट क्र० ३।
३. हरगौरी, एन० गुप्त का संस्करण, क्र० १३।

स्त्रियों में से एक कहती है,[१] "उस तपस्वी (नारद) के द्वारा पता नहीं कैसा दूल्हा खोजा गया जिसे देखकर गौरी इतनी मोहित हो गयी! आँख में आग जल रही है, हम काजल कहाँ लगायें? सिर पर गंगा की धारा है, हम चुमाउन[२] कैसे करें? बारात में भूतप्रेत आये है, उन्हें भोजन कैसे करायें? दूल्हे के पाँच मुख हैं, हम किसमें महुअक[३] दें?" आदि। ये सभी स्थानीय संस्कार है किंतु वैदिक संस्कारों के करते समय भी बड़ी गड़बड़ी हो गयी। एक दर्शक[४] का कथन है, "जब शिव वेदी[५] के पास गए तो वहाँ का दृश्य देखते ही बनता था। जैसे ही जटाजूट में अकुशी[६] खोसी गयी, गंगा बहने लगी और संस्कारों के लिए एकत्र सारी सामग्री भी बहने लगी। शिव के साँड नंदी ने कुश को देखा तो वह उसे खाने लगा। लाजा की ओर सर्पों का ध्यान गया तो वे भयंकर फुत्कार करने लगे जिस से भयभीत हो गया, आदि"।

इन लोकप्रिय गीतों के अभिव्यंग्य को तभी अच्छी तरह समझा और सराहा जा सकता है जब कि विशिष्ट सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि का सामान्य ज्ञान हो। यही कारण है कि मैथिल समाज के बाहर इन पर उतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना कि देना चाहिए। फिर भी वे अनेकों अत्यंत मनोरंजक कल्पनानन्दी पूर्ण स्थितियों का वर्णन करते हैं।

अंत में, वे शिव-गीत हैं जो शिव के पारिवारिक जीवन का चित्रण करते है, विशेषतः शिव के घर में पार्वती का। सांसारिक दृष्टि से देखने पर, गृहिणी पार्वती का संकट वस्तुतः अनीर्ष्य है। परिवार का मुखिया एक बूढा आदमी है जो संपत्तिहीन और विषपायी है। उसके स्वयं के तो पाँच मुख हैं ही उसके दो बेटों में से, एक के छह मुख है और दूसरे का मुख हाथी का है। पार्वती का वाहन सिंह है, शिव का साँड, बड़े बेटे का मोर और छोटे का चूहा और ये सब जानवर एक-दूसरे के महान् शत्रु है। घर में शांति रखना और सभी को भोजन देना भी एक समस्या है। पार्वती कहती है, "हे माँ, मैं कैसे रहूंगी, राख की एक गठरी के सिवा घर में कुछ नही है। सामग्री कुछ भी नहीं, पहनने के लिए कपड़े का एक

---

१ भाषा-गीत-संग्रह, क्र० ६७।

२ चुमाउन मैथिल-परिवार की एक सामान्य प्रथा है जिसमें व्यक्तिविशेष के सिर के ऊपर से धान, केला, नारियल, पान, दही आदि से भरी हुई बांस की टोकरी घुमाई जाती है।

३ महुअक (जो मधुपर्क का मैथिली रूप है) उस मीठी खीर को कहते हैं जो सास दूल्हे को चटाती है।

४ भाषा-गीत-संग्रह, परिशिष्ट क्र० २।

५ वेदी होम करने के लिए आंगन में बनायी जाती है।

६. लाख का बना हुआ एक रंगीन अंकुश जो होम करते समय दूल्हे की शिखा से लटका दिया जाता है।

टुकड़ा भी नहीं, कोई उधार देने वाला नहीं; भूख से व्याकुल बच्चे, मैं उन्हें खाने के लिए क्या दूं ? सांप तो हवा पीकर रह जाते हैं और स्वामी जहर खाकर। स्वामी और सेवक को कोई चिन्ता नहीं, किंतु मैं कैसे रहूँगी, आदि[1]'' स्वयं शिव से पार्वती कहती हैं[2] ''स्वामी, मैंने बार-बार आपको सलाह दी है कि कुछ खेती शुरू कर दो। जब तक आपके पास अनाज नहीं होगा, आप भीख मांगने के सिवा कुछ नहीं कर सकते जो कि बड़ा तुच्छ काम है, आदि।'' ऐसे दर्जनों गीतों में, विद्यापति ने घोर दरिद्रता और असहायता का वास्तविक चित्रण किया है तथा साधारण स्त्री-पुरुषों के द्वारा बोली जाने वाली सरल भाषा में रचे जाने के कारण उनका स्त्री-जनों पर विशेष प्रभाव पड़ता है, जिनके मन में पार्वती की कठिनाइयों और धीरज के विषय में हार्दिक सहानुभूति जागरित हो जाती है। अतः आश्चर्य नहीं कि मिथिला में गृहिणियों के लिए पार्वती एक आदर्श बन गयी है और वे सब सफल गृहस्थ जीवन चलाने के लिए पार्वती की सराहना करती हैं।

तथापि यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन सभी शिव-गीतों में चाहे वे ताना-भरे सुर में लिखे गए हों चाहे उनकी विषयवस्तु विरोधाभासात्मक हो, शिव के व्यक्तित्व को उसकी सभी विशेषताओं के साथ प्रकाश में लाया गया है और इस हद तक वे भगवान् की उन विशेषताओं को हमारे सामने लाने का काम करते हैं जिनका ध्यान करना भक्ति का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। ऊपर से वे चाहे जैसे भी लगें, तत्त्वतः वे भक्ति-गीत हैं। उनमें से कुछ भीतिकर हैं, अधिकांश हास्यकर हैं, और कभी-कभी वे शृंगार रसपूर्ण भी हैं; किंतु इन सबमें अचरज की एक लहर दौड़ती है जो भक्ति की भावना जागरित करने में सहायक है और किसी भी शिवमंदिर में सोन्माद नाचते हुए व इनमें से कोई भी एक गीत गाते हुए शिव-भक्त को देखा जा सकता है।

और ये शिवगीत मैथिली-साहित्य की एक विशेषता हैं जिनके समान गीत हमें इस क्षेत्र की दूसरी किसी भाषा में भी नहीं मिलते। ये भारतीय साहित्य को विद्यापति की इतनी मौलिक देन हैं कि बहुत समय तक लोगों के मन में विद्यापति का नाम नचारी-गीतों के साथ जुड़ा रहा। यह उस बात से भी स्पष्ट है जो लखनसेनी ने पन्द्रहवीं सदी में और अबुल फज्ल ने सोलहवीं सदी में कही थी। मिथिला में यह भक्ति-काव्य का एक सर्वाधिक लोकप्रिय रूप बन गया और इन पांच से अधिक सदियों के दौरान मिथिला भर में सैकड़ों कवियों ने ऐसे हजारों गीत लिखे हैं। नेपाल में तो नचारी के रूप में ही सभी भक्ति-गीत लिखने का

---

१. भाषा-गीत-संग्रह, परिशिष्ट क्र० ४।
२ हरगौरी, क्र० ३१।

फ़ैशन हो गया और नेपाल में सुरक्षित संकलनों में हमें मिलते हैं विष्णु के नचारी, गणेश के नचारी, सूर्य के नचारी, दुर्गा के नचारी इत्यादि।

यह देखकर अत्यंत दुःख होता है कि आधुनिक काल में विद्यापति-साहित्य के इस अंश पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, मानो कि काव्य की दृष्टि से ये गीत नीचे दर्जे के हों और उन महान् कविगुरु विद्यापति के योग्य न हों। करीब एक सौ साल पहले विद्यापति की ओर नवयुग के विद्वानों का ध्यान गया एवं बीम्स और ग्रियर्सन सदृश अंग्रेज विद्वान् तथा उनके बाद शारदाचरण मित्र और नगेन्द्रनाथ गुप्त सदृश बंगाली विद्वान् अत्यंत समीक्षात्मक दृष्टि से विद्यापति का अध्ययन करने लगे। लेकिन बंगाल में बंगाली वैष्णव ग्रंथों मे जितना विद्यापति-साहित्य उपलब्ध था, उन्होंने उतने का ही अध्ययन किया और उनमें तो उपलब्ध थे केवल कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने वाले विद्यापति के शृंगाररसपूर्ण गीत। इन लोगों ने विद्यापति के अध्ययन का अपना एक ढंग प्रस्तुत किया और दुर्भाग्यवश मिथिला के विद्वानों ने भी विद्यापति के बंगाली प्रशंसकों का अनुसरण किया। केवल हाल ही में मैंने कलकत्ता के डॉ० शंकरी-प्रसाद वसु की कृतियों को अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक पढ़ा, जिनमें विद्यापति के भक्ति-पूर्ण शिव-गीतों की ओर उतना ही ध्यान दिया गया है जितना कि उनके शृंगार-रसपूर्ण कृष्ण-गीतों की ओर एवं हम आशा कर सकते है कि विद्यापति के उन सभी शिव-गीतों को संकलित करने के प्रयत्न किए जाएंगे जो अभी भी लुप्त नहीं हुए हैं और सच्चे मैथिल दृष्टिकोण से इन गीतों का समीक्षात्मक अध्ययन करने का गंभीर प्रयास किया जाएगा, तभी इन्हें अच्छी तरह समझा जा सकता है और इनका सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

८

फिर भी यह एक तथ्य है कि विश्वकवि के रूप में विद्यापति की कीर्ति आज प्रमुखतः उनके प्रेम-गीतों पर ही आधारित है। वे सचमुच अमर प्रेम के मधुर गायक थे—भौतिक या यौन-प्रेम के जिसके कारण स्त्री-पुरुष एक दूसरे से मिलने की कामना करते हैं। सभी मानवीय भावनाओं में यह सर्वाधिक तात्त्विक है, इसी पर सृष्टि की प्रक्रिया आधारित है और पूरे संसार में हर युग में यह काव्य का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप रहा है—शृंगार-रस-पूर्ण काव्य से संस्कृत साहित्य सुसमृद्ध है और इस प्रकार के काव्य का प्रारंभ ईसापूर्व के प्राकृत गीतों में देखा जा सकता है। किंतु विद्यापति ने इसे सीधे जयदेव से ग्रहण किया जिनकी कविता श्रीकृष्ण और ब्रज की गोपियों के यौन-प्रेम के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करती है।

किंतु विद्यापति के प्रेम-गीत इतने लोकप्रिय केवल अपनी विश्वजनीन विषय-वस्तु के कारण ही नहीं, बल्कि कविगुरु के उत्कृष्ट रचनाकौशल के कारण भी हुए हैं। इन गीतों में तीन विभिन्न तत्त्व हैं, प्रत्येक अपने में महत्त्वपूर्ण है और तीनों ने मिलकर इन गीतों को वह अनुपम लोकप्रियता प्रदान की है जिसने समय और स्थान की सभी सीमाओं को लाँघ दिया है।

महत्त्व में सर्वप्रथम वस्तुतः विषयवस्तु है। उनके सभी गीत गेय हैं जो संस्कृत अलंकारशास्त्र में 'मुक्तक-काव्य' कहे जाते हैं, जिसमें प्रत्येक गीत स्वतंत्र होता है। अतः ये गीत स्त्री-पुरुषों के यौन-जीवन की विभिन्न भावनाओं को चित्रित करते हैं। अपनी कल्पना-शक्ति से विद्यापति स्वेच्छानुसार एक विशिष्ट भावना अंतर्दृष्ट करते हैं और उसे इतनी सच्चाई से, इतनी वास्तविकता से, इतने अनुभूतिपूर्वक एवं इतनी सहानुभूति के साथ चित्रित करते हैं कि उसमें वर्णित स्थितियों में प्रत्येक जन स्वयं को ही चित्रित समझता है।

द्वितीयतः ये गीत ऐसी भाषा में रचे गए हैं जो मधुर लयात्मक और सुरीली है। शब्दों का चुनाव अत्यंत कुशलतापूर्वक किया गया है, सही जगह पर सही शब्द, प्रसंगानुकूल, सरल, प्रत्यक्ष, सुबोध और स्निग्ध। ह्रस्व स्वर और तरल व्यंजनों की अधिकता के कारण बंगाली के समान मैथिली भी बहुत मीठी भाषा है और इस बात का गौरव मुख्यतः विद्यापति को दिया जाना चाहिए, जिन्होंने शब्दों के रूप को इस प्रकार ढाला कि अपभ्रंश-काल की सभी रूक्षताएं निकल गयी और शब्दों का प्रवाह मृदुल लयात्मक हो गया। विद्यापति के गीतों में शब्दों का चुनाव श्रोताओं के अनुकूल किया गया है; किंतु शब्द चाहे तत्सम हो, चाहे तद्भव, चाहे देसी; वह सुकोमल, मधुर, सरल और कर्णप्रिय होने के साथ-साथ हृदय पर तुरंत प्रभाव डालने वाला है। विद्यापति में ध्वनि के द्वारा अर्थ का अनुसरण करवाने की क्षमता थी, जिससे कि हम भले ही अर्थ न समझ पाएं, गीत में व्याप्त भावना का हम तुरंत अनुभव करने लगते हैं।

तृतीयतः ये सभी गीत पूर्वी भारत के विशिष्ट रागों में रचे गए हैं। बौद्ध सिद्धों के द्वारा अपने गान में प्रयुक्त राग, जयदेव के द्वारा गीतगोविन्द में प्रयुक्त राग, ज्योतिरीश्वर के द्वारा वर्णरत्नाकर में उल्लिखित राग सब उसी प्रकार के हैं, जिन्हें विद्यापति ने प्रयुक्त किया है। कर्णाटों के अधीन मिथिला में संगीत को संरक्षकत्व मिला जिससे वह फूला-फला और लोचन ने जो कुछ रागतरंगिणी में कहा है, उससे यह स्पष्ट है कि मैथिली संगीत का एक स्वतंत्र सम्प्रदाय था जिसकी कुछ निजी विशेषताएं थीं...जैसे वह हमेशा विलंबित लय में सामूहिक रूप से गाया जाता था, इत्यादि। इस संगीत के विकास में विद्यापति का काफी योगदान है। उन्होंने प्रयुक्त रागों को लिया और उन्हें एकदम मधुर व सुरीली धुनें प्रदान कीं जिससे कि एक ही राग के अधीन भिन्न-भिन्न धुनें हो गयी। एक

शब्द को गाकर सुनाने मे जितना समय लगता था, उसपर गीतों का छन्दीकरण आधारित था और फलस्वरूप ह्रस्व व दीर्घ स्वर पाठ के तरीके पर निर्भर थे तथा निश्चित नही थे। लोचन अपनी रागतरंगिणी में कहते हैं कि विद्यापति के किसी भी गीत का छन्द वही है जो राग का नाम है और इस दृष्टिकोण को माना जाता रहा है, किंतु यदि पंक्ति मे निबद्ध शब्दों पर छन्द आधारित है तो लोचन का यह दृष्टिकोण सही नही मालूम पड़ता क्योंकि गाने के ढंग के अनुसार एक ही गीत को विभिन्न गुरुओं ने विभिन्न रागो के अंतर्गत रखा है और इसलिए शब्दों की एक ही प्रकार की पदशय्या को विभिन्न छन्द मानना सुसंबद्ध नही है, यद्यपि गीत की ध्वनियो की पृथक्-पृथक् रचना उन्हें पृथक्-पृथक् रागों के अधीन रख सकती है। फिर भी विद्यापति ने अपने गीतो मे एक ही राग के विभिन्न प्रकार प्रस्तुत किये हैं और चूंकि उनमें से अधिकांश नवीन आविष्कार थे, वे न केवल विषयवस्तु के कारण, बल्कि प्रस्तुत नवीन संगीत के कारण भी लोकप्रिय हो गये।

विद्यापति ने अपने गीतो का वर्गीकरण रागो के आधार पर किया है। जब इनमे से कोई लोकप्रिय हो जाता था, उत्तरवर्ती कवि उसका अनुकरण करते थे और इस प्रकार विद्यापति के अनेकों लोकप्रिय गीत नमूना बन गए तथा विभिन्न नामों से जाने जाने लगे। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। संस्कृत साहित्य मे खंडिता एक प्रकार की नायिका को कहते हैं जो अपने उस प्रेमी से नाराज है जिसे दूसरी महिला से प्रेम करते हुए पकड़ लिया गया है और प्रेमी उसे हर तरह से मनाने की कोशिश कर रहा है। विद्यापति ने अपने कुछ गीतों में वर्णन किया है कि किस प्रकार रात भर मनाने के बाद प्रेमी नायिका को बतलाता है कि रात्रि समाप्त हो रही है, फिर भी वह नहीं मानती। इस प्रकार का गीत बहुत लोकप्रिय था और इसे प्रातःकाल के लिए उपयुक्त प्रभाती राग में गाया जाता था। उत्तरवर्ती कवियो ने इसी नमूने का अनुसरण किया और धीरे-धीरे यह गीत 'मान' कहलाने लगा, जो मैथिली गीत का एक महत्त्वपूर्ण प्रकार है जिसे प्रत्येक कवि ने उसी राग मे रचा है। इस प्रकार विभिन्न गीत विभिन्न नामों से विकसित हुए—विषयवस्तु को अभिव्यंजित करते हुए और अपने विशिष्ट रागों के साथ... किंतु विद्यापति के लिए ये सभी अज्ञात थे। उनके लिए केवल राग ही महत्त्वपूर्ण था और अनेक सशक्त कारणों में से यह भी एक कारण था जिसके द्वारा उनके गीत तुरत लोकप्रिय हो गये। इन रागों ने लोगों को उत्स्फूर्त कर दिया और कोमल शब्दों के मधुर लयपूर्ण प्रवाह ने उनके हृदयों को जकड़ लिया और जब शब्दो के जादू के द्वारा वे अर्थ को सरलतापूर्वक समझने लगे, तब सच्चे काव्यानंद से उनकी आत्मा भर गयी। विद्यापति के गीतों का पूरी तरह आनंद लेने के लिए उन्हें उस समय सुनना चाहिए जब वे ठीक से गाए जा रहे हों। उनके गीतों को पढ़ने से केवल दो-तिहाई आनंद ही मिल सकता है और उनका अनुवाद पढ़ने

से तो हम संगीत और शब्दों के जादू से वंचित रह जायेंगे और उस आनंद का केवल एक तिहाई ही पा सकेंगे जो ये गीत प्रदान कर सकते है।

इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि विद्यापति के शृंगाररसपूर्ण गीतों का विषय प्रेम है, भौतिक प्रेम, स्त्री-पुरुष का यौन प्रेम—बिना किसी आध्यात्मिक या रहस्यात्मक दूरस्थ अभिप्राय के। यह उनकी प्रतिभा की महत्ता ही है कि विभिन्न लोग उनके शब्दों का विभिन्न अर्थ निकालते हैं। चैतन्य और उनके अनुयायियों के लिए ये गीत भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हैं और चूँकि भगवान् की लीलाओं का वर्णन उनकी उपासना का एक भाग है, बंगाल के वैष्णव-जन इन गीतों को शुद्ध भक्तिपूर्ण मानते हैं। ग्रियर्सन और उनके समान व्यक्तियों के मत में ये कबीर के गीतों के समान ही रहस्यात्मक हैं जिनमें यौन-प्रेम के बहाने आत्मा की परमात्मा से मिलने की उत्कंठा वर्णित की गयी है। किन्तु विद्यापति के आधे से भी कम गीतों में ही कृष्ण और राधा का उल्लेख है तथा उनमें भी नामोल्लेख मात्र है। चैतन्यदेव के अनुयायी इन सभी गीतों को कृष्ण और राधा की लीलाओं का वर्णन करने वाले मानते है, जब कि हम देखते है कि अनेकों गीतों में[1] विद्यापति ने कान्हा, मधाई आदि शब्दों के द्वारा अपने सरक्षक शिवसिंह का संकेत किया है जिन्हें वे विष्णु का ग्यारहवां अवतार कहते हैं। जो भी हो, कृष्ण संस्कृत-साहित्य के नायकों के एक प्रकार हैं और राधा या गोपी एक प्रकार की नायिका।

वस्तुत: विद्यापति ने इन प्रेम-गीतों की रचना संस्कृत-साहित्य के नमूने पर की है। कीर्तिपताका के नाम से प्रकाशित कृति के खंड में एक अंश[2] ऐसा है जिसमें यह कहा गया है कि चूँकि त्रेतायुग के अवतार में भगवान् को सीता से वियुक्त होना पड़ा, इसलिए वे द्वापर युग में फिर से कृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए और गोप के रूप में, चार प्रकार के नायकों में से एक की तरह, आठ प्रकार की नायिकाओं में से एक, युवती गोपियों के साथ जीवन के विषयभोगों का उपभोग करते रहे। इस बात से विद्यापति की कुशलता स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने संस्कृत अलंकारशास्त्र से चार प्रकार के नायकों और आठ प्रकार की नायिकाओं के प्रकार ग्रहण किये एवं उनके संदर्भ में अपने गीत रचे। यह दूसरी बात है कि नायक चाहे कृष्ण हों या अन्य कोई पुरुष और नायिका गोपी, राधा या अन्य कोई स्त्री। शृंगार-रस की अभिव्यंजना के लिए नायक और नायिका, प्रेमी और प्रेमिका आवश्यक है क्योंकि तभी अंगी रस का साधारणीकरण संभव है। अरस्तू के शब्दों

---

१ गीत क्रमांक ३५, १६४, १७५ व १७७; मित्र और मजूमदार के संस्करण में।

२ कीर्तिपताका, पृ ८-९।

में[1] "पात्रों को व्यक्त नाम देकर काव्य का उद्देश्य साधारणीकरण करना है"। मानव जीवन के सार्वजनीन तत्त्व की अभिव्यक्ति ही काव्य है। दूसरे शब्दो मे, काव्य मानवीय जीवन, चरित्र, मनोवेग या कार्य का इंद्रियगम्य रूप में आदर्शीकृत बिम्ब है। "काव्य की शक्ति इतनी ही सीमित है कि वह विश्वजनीन को उसी के रूप में नही, वल्कि इद्रियगम्य बिम्बावली के माध्यम से व्यक्त करता है[2]"। इस दृष्टि से विद्यापति ने हमें सच्ची कविता प्रदान की और जब हम उन्हे कवि मान लेते है, तब इस बात का कोई महत्त्व नही रह जाता कि उनका नायक या नायिका कौन है।

इसी प्रकार विद्यापति के गीतों में किसी रहस्यात्मक तात्पर्य को खोजना ही निरर्थक है। यहां केवल प्रेमिका ही भगवान् के लिए उत्कंठित नही है, बल्कि भगवान भी प्रेमिका के लिए उत्कठित हैं। यह सही हैकि विद्यापति की नायिकाओ के आत्मसमर्पणात्मक प्रेम को चैतन्यदेव ने भगवान् से मिलने के लिए भक्त की उत्कंठा के परिपूर्ण आदर्श के उस रूप में देखा, जिसे वैष्णव-जनो ने मधुर रस की सज्ञा दी; अथवा वह कवीर के द्वारा नि:सीम के लिए आत्मा की मिलन कामना का प्रतीक माना गया। किंतु तब विद्यापति के सामने ये धारणाएँ नही थी, जब उन्होंने ये गीत रचे थे और इन्हें उस परंपरा में स्थान नही मिला जो विद्यापति ने संस्कृत शृंगारकाव्य से ग्रहण की और मैथिली-काव्य मे स्थापित की। विद्यापति ने प्रेम के गीत गाए क्योंकि उनके लिए कामेच्छा की संतुष्टि मानवीय जीवन की उतनी ही महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी, जितनी की धार्मिकता, धनवत्ता और अंतिम मोक्ष।

यह कहा गया है[3] कि काव्य के सभी स्पष्टीकरण सामान्यत: अरस्तूवादी या बेकनवादी वर्ग में आते हैं और चाहे जिस दृष्टिकोण से हम विद्यापति के काव्य को देखें, हम पाते हैं कि वे अपनी कला में पारंगत थे। अरस्तू काव्य को एक अनुकरणात्मक कला मानते है, किंतु वे यह स्वीकार[4] करते हैं कि कवि का काम जो सचमुच हो रहा है उसे बतलाना नहीं है, बल्कि जो होना संभव है उसे बतलाना है। काव्य-सत्य के विषय में बोलते हुए वे कहते हैं[5] कि अननुमेय किंतु संभव बात की अपेक्षा अनुमेय असंभाव्यता को ही मानना चाहिए, क्योंकि

१ पोएटिक्स, ९।३।
२. बूचर एस० एच०; एरिस्टॉटल्स थ्योरी आफ पोएट्री एंड फाइन आर्ट; लंदन, १८९५, पृ० १७८।
३. हडसन; इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ इंग्लिश लिट्रेचर, पृ० ६६।
४. एरिस्टाटल; पोएटिक्स, ९।१।
५. तत्रैव: २५।१७।

असंभाव्यता श्रेयस्कर है, कारण यह कि मस्तिष्क के सामने उपस्थित आदर्श वास्तविकता से बढ़कर होना चाहिए। चाहे युवती की अंगयष्टि का या उसकी मनोदशा का वर्णन हो, चाहे संयोग या वियोग की अवस्था में प्रेमियों का वर्णन हो, चाहे कामेच्छा से संबद्ध काल या ऋतु का वर्णन हो, विद्यापति हमेशा नवीनता प्रस्तुत करते हैं; अनुभूति की यथार्थता नहीं, वास्तविकता की अनुकृति नहीं, किंतु एक उच्चतर वास्तविकता। प्रकृति में बिखरे हुए अनेक सौन्दर्य-तत्त्वों को वे एकत्र लाते हैं। केवल चुनना, जोड़ना, सजाना, इधर जोड़ना और उधर घटाना ही पर्याप्त नहीं है। वे उन सबका हमेशा एक आदर्श ईकाई के रूप में सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं।

दूसरी ओर बेकन काव्य को 'मिथ्या इतिहास' मानते हैं[1] और "मिथ्या इतिहास का उपयोग यह है कि वह मनुष्य के मन को उन बातों में कुछ संतोष प्रदान करता है, जिनमें प्रकृति प्रदान नहीं करती, आत्मा की अपेक्षा संसार समानुपातत: हीन होने के कारण, जिस कारण मनुष्य की आत्मा को प्रकृति की अपेक्षा विस्तृततर महत्ता, यथार्थतर शिवत्व और पूर्णतर विविधता अभिमत हो जाती है"। इस प्रकार बेकन काव्य-सत्य के सिद्धांत की पूरी तरह उपेक्षा कर देते हैं और काव्य को कल्पना-शक्ति का निर्बाध अभ्यास मानते हैं। इसलिए वे काव्य को केवल मस्तिष्क का 'नाट्यगृह' मानते हैं जहां कोई भी आराम और मनोरंजन के लिए भले ही चला जाये, किंतु जहां 'अधिक समय तक ठहरना अच्छा नहीं है' क्योंकि वह केवल मिथ्या है।

विद्यापति के गीत 'मानवीय जीवन, चरित्र, मनोदशा और कार्य' के आदर्शीकृत प्रतिरूप हैं और जो मैथ्यू अर्नाल्ड ने शेक्सपियर के विषय में कहा था वही म विद्यापति के विषय में भी कह सकते हैं कि उन्होंने हमें प्रेम के संसार का सारा 'आश्चर्य और विकास, प्रदान किया। किंतु विद्यापति व्यवसाय से कवि नहीं थे; यह उनका गौण उद्यम था इस अर्थ में कि जब उनका गाने का मन होता था तब वे अपने प्रशंसकों, विशेषत: स्त्रियों के लिए गीत रचते थे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इन गीतों को रचने के समय वे 'मिथ्या' का सहारा लेते रहे। उन्होंने ये गीत अपनी पूर्ण युवावस्था में ही लिखे थे, जब वे शिवसिंह के हितैषी संरक्षकत्व में प्रसन्न थे। व्यवसाय से वे एक पंडित, राजपंडित थे जो सर्वदा राज्य और जीवन की गंभीर बातों में व्यस्त रहते थे। इसलिए जब विद्यापति विवाह-बाह्य प्रेम, अभिसार, गुप्त मिलन आदि के विषय में लिखते हैं, तब हम यह नहीं कह सकते कि वे स्वयं के अनुभवों को काव्य में व्यक्त कर रहे थे। हम केवल यह स्पष्टीकरण दे सकते हैं कि विद्यापति 'मिथ्या' का सहारा ले

---

१ बेकन, एडवांसमेंट आफ लर्निंग (एवरीमैन्स लाइब्रेरी), पृ० ८२-८३।

रहे थे। वस्तुतः ये गीत विशेष अवसरों पर केवल मनोरंजन के लिए ही गाये जाते है या जैसा कि बेकन कहते है, वे वास्तव में मस्तिष्क के नाट्यगृह के समान रहे है जहां लोग आराम और मनोरंजन के लिए जाते है।

विद्यापति के काव्य का एक प्रमुख तत्त्व उसकी उद्घाटक-शक्ति है। स्त्री-देह या प्रकृति के लुभावने सौन्दर्य की ओर हमारी दृष्टि को खींचता ह। इस प्रकार विद्यापति के काव्य का परिसर सीमित है। उन्होंने केवल स्त्रीससार के यौन-जीवन के विषय में लिखा है, किंतु उस परिसर के भीतर भी उनकी देखने की और लुभावने सौन्दर्य को (यहां तक कि स्त्रियों के हृदय की धड़कनों को) अनुभव करने की शक्ति सर्वप्रधान है। और साथही जो वे देखते या अनुभव करते थे उसे इस प्रकार व्यक्त करने या समझाने की उनमें शक्ति है कि हममे भी उनके साथ देखने या अनुभव करने की कल्पना और सहानुभूति उद्भूत हो जाती है। वे हमारे मस्तिष्क के ध्यान को जागरित करते हैं और उसे यौन-प्रेम के "सौन्दर्य एवं आश्चर्यों की ओर उन्मुख करते हैं"। फ्रा लिप्पो लिप्पी के मुख से ब्राउनिंग हमें बतलाते है—

क्या देखते नहीं ? हम बने हैं ताकि हम प्रेम करें,
पहले जब हम उन्हें चित्रित देखते हैं, उन बातों को
जिनके पास से शायद हम सौ बार निकल चुके है, बेपरवाह,
इसलिए वे अधिक अच्छी हैं, हमारे लिए अच्छी तरह चित्रित है,
जोकि एक ही बात है। इसी बात के लिए तो कला है।

यह चित्रकार की क्षमायाचना है, किंतु विद्यापति भी शब्द-चित्रकार थे। किशोरावस्था में प्रवेश करती हुई कन्याओं को किसने नही देखा, किंतु प्रतिदिन उद्भासमान परिवर्तनों को चित्रित[१] करने वाले अपने अनेकों गीतों में वे उस सौंदर्य को उद्घाटित करते हैं जो एकदम नया व विस्मयकारी लगता है। वे सौंदर्य को अत्यंत सूक्ष्मता से देखते है और अपनी सूक्ष्मग्राहिणी कल्पना की सहायता से उन सूक्ष्मताओं को प्रत्यावृत कर सकते हैं, जिन्हें वे सरल, लुभावनी और आवेगपूर्ण भाषा में व्यक्त करते है। प्रारंभिक किशोरावस्था के विषय मे जो सच है वही किशोरी और उसके वयस्क प्रेमी के प्रथम मिलन के विषय मे भी सच है। अभी-अभी तक मिथिला मे सुसंस्कृत परिवारों के युवक प्रायः पच्चीस वर्ष की उम्र में दस वर्ष की कन्या से विवाह करते थे और प्रदेश के सामाजिक जीवन का यह पहलू विद्यापति के प्रेमगीतों में आश्चर्यजनक रूप से प्रतिबिंबित है। प्रारंभिक किशोरावस्था से संबंधित गीतों में[१] बढती हुई उम्र वाली कन्या मे धीरे-धीरे होने वाले ध्यान से अनुभूतिपूर्वक दृष्ट परिवर्तनों का विशद चित्र प्राप्त

१. यथा गीत क० ३ से ११, १३ इ।

है, जबकि प्रथम मिलन से संबंधित गीतों में[1] पहली बार अपने प्रेमी से मिलने के लिए जाने वाली कन्या का मनोवैज्ञानिक चित्र, उसके मस्तिष्क की हलचल का सूक्ष्म विवरण है।

विद्यापति के प्रेम-गीतों के विषय में सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि वे प्रायः सदैव प्रेम को ओर स्त्री के दृष्टिकोण से देखते हैं। यह उनके व्यवहार-गीतों और शिव-गीतों के विषय में भी सही है, किंतु प्रेम-गीतों में इस बात का अपना एक अलग महत्त्व है। इस विषय में वे जयदेव और गोविंददास तथा दूसरे वैष्णव कवियों से उल्लेखनीय रूप से अलग हैं। विद्यापति ने सदैव प्रेमी के लिए प्रेमिका के आकर्षण (पूर्वराग) का ही सुंदर चित्रण किया है, प्रेमिका के लिए प्रेमी के आकर्षण का नहीं। अपने एक गीत में[2] विद्यापति कहते हैं कि "वे स्त्री के हृदय में प्रच्छन्न रूप से प्रवहमान सैकड़ों मूक अभिलाषाओं और उत्कंठाओं की अभि-कल्पना करके ही गीत गाते हैं।" प्रारंभिक किशोरावस्था से लेकर पूर्ण परिपक्व होने तक स्त्री के जीवन की ऐसी कोई अवस्था नहीं है जिसके विद्यापति ने विशद चित्र नहीं खींचे हैं और सौंदर्य का वर्णन करने के लिए उन्होंने अधिकांशतः प्रकृति और कला का सहारा लिया है। नखशिख-वर्णन में शरीर के प्रत्येक अंग का वर्णन प्रायः ग्रीक प्रवृत्यनुसार किया गया है और वर्ण-भावना इतनी सही व अंतर्भेदी है कि चित्र अद्भुत, आदर्श रूप में आकर्षक और मोहक बन जाता है। इसी प्रकार स्त्री के हृदय और मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के विषय में भी उनकी अंतर्दृष्टि अद्भुत है। विद्यापति के किसी भी गीत का विश्लेषण इस मूल तथ्य का साक्षी हो सकता है, किंतु उनके प्रेम-गीत कितने अंतर्भेदी और उद्घाटक हैं यह बतलाने के लिए मैं तीन उदाहरण उद्धृत कर रहा हूं। उनके गीतों के एक समूह में (क्र० २३० और तदनुगामी), अपने प्रेमी से मिलने जाने वाली कन्या को एक सखी सलाह देती है और सलाह पूर्णतः स्वाभाविक तथा किशोरियों के हाव-भावों को बतलाने वाली है। एक दूसरे (क्र० २३४) में किशोरी अपनी असहाय अवस्था का वर्णन करती है कि जब वह अकेली अपने प्रेमी के सामने पहुंचती है, तब उसके मन की क्या अवस्था रहती है। वर्णन अत्यंत स्वाभाविक, सहजोक्त, कामनापूर्ण और भावनात्मक है। एक तीसरे (क्र० २८८) में एक किशोरी पूरी तरह सजकर अपने उस प्रेमी से मिलने के लिए कमरे से बाहर आती है जिसे उसने वह अमावस्या का दिन समझकर वचन दे दिया था; किंतु अब वह देखती है कि सारा आकाश चाँदनी से प्रकाशमान है। वह चक्कर में पड़ जाती है। वह अपने प्रेमी को निराश नहीं कर सकती, परंतु साथ ही रास्ते में दिखलाई दे जाने

---

१. यथा गीत क्र० १५० से २१४ इ०।

२ यथा गीत क्र० ८२८।

का खतरा भी नहीं उठा सकती। सारा चित्र उसके चकराए हुए मस्तिष्क का है जो प्रेमी और सम्मान के बीच विभाजित है। उनकी प्रतिभा की इस विशेषता ने उनकी कविता को सामान्य स्त्री-जनों के बीच अत्यंत प्रिय बना दिया, जिन्होंने उन्हें अपने कंठ में जीवित रखा। स्त्री के यौन जीवन का सही में ऐसा कोई पहलू नही है—संयोग या वियोग, आनंद या दुःख, उत्कंठा या पश्चात्ताप, आशा या निराशा, सदेह या निश्चय—जिसका उन्होंने चित्रण नही किया है और उनमें से प्रत्येक मे उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा आदर्शरूप में स्त्री-हृदय की सही झलक देखी है तथा सदैव विषयवस्तु के अनुकूल भाषा में उसे व्यक्त किया है। फिर भी हम कह सकते हैं कि भौतिक प्रेम के दो पहलू है—स्त्री और प्रेमीयुगल—जो विद्यापति को गीतिमय उल्लास में प्रक्षिप्त कर देते है। रवीन्द्रनाथ ने वस्तुत विद्यापति के काव्य का सही मूल्यांकन किया था जब उन्होंने कहा था कि विद्यापति आनंद के, प्रेमियों के मिलन-आनंद के कवि थे।

विद्यापति की आँखों के सामने यौन-जीवन का पूर्ण चित्र था, यौन-जीवन के दर्शन की अत्यन्त स्पष्ट धारणा। उनके लिए वह मानव-हृदय की एक मूल-भावना मात्र नही थी और न ही मानव-जीवन का एक मूलोद्देश्य, एक जैविक आवश्यकता। उनके लिए प्रेम इस आनंदविहीन जीवन में आनंद का एक स्रोत था। विद्यापति के द्वारा चित्रित स्त्री के यौन-जीवन की चित्रावली इतनी वास्तविक, इतनी पूर्ण, इतनी विविध और रंगीन, इतनी कल्पनायुक्त, इतनी अनुभूतिपूर्वक व्यक्त, इतनी मधुर शब्दात्मक तथा इतनी सुरीली धुन वाली थी कि वह कामिनी-विलासों को पूरी तरह सीखने के लिए एवं प्रेमी को पूर्ण संतोष देते हुए यौन-जीवन का आनंद पाने के लिए स्त्री-जनों को यौन-शिक्षा देने का कार्य करती थी।

विद्यापति के प्रेम-चित्रण का एक विचित्र परिणाम यह था कि इन गीतो ने सहज ही चैतन्यदेव को अपनी ओर खींचा। हम जानते हैं कि चैतन्य का अपना एक विशिष्ट भक्तिमार्ग था जो बंगाली वैष्णव सम्प्रदाय बना और जिसने चैतन्य के विद्वान् शिष्यों के जरिए भक्ति के सिद्धांत में एक क्रांति उत्पन्न कर दी तथा सस्कृत काव्य मे मधुर रस की उद्‌भावना की। चैतन्य स्वयं को कृष्ण की प्रेमिका, प्रेम में आत्म-समर्पण करने वाली, राधा मानते थे और चैतन्य के साथी अपने को वृन्दावन की गोपियाँ समझते थे—भगवान् से मिलने के लिए उत्कंठित। सच्ची भक्ति के कारण, सही प्रेमानुभूतिवश, उनकी भावनाएं स्त्रैण बन गयी थी। इसलिए विद्यापति के प्रेम-गीत उन्हें स्वयं की भावनाएँ और अनुभूतियाँ, इच्छा और उत्सुकता चित्रित करने वाले लगे। इन गीतों ने उनके हृदय के तारों को झंकृत कर दिया और चूंकि ये सच्चे और प्रामाणिक चित्र थे, इनका भगवान कृष्ण के भक्त प्रेमियो पर व्यक्तिश प्रभाव पडा। अत आश्चर्य नही कि उनकी

दृष्टि में विद्यापति का प्रत्येक प्रेम-गीत उन अनुभूतियों को चित्रित करने वाला था जो एक स्त्री गोपी की, एक भक्त-प्रेमिका की थीं जैसा कि वे अपने को समझते थे। इसीलिए चैतन्यदेव इन प्रेम-गीतों से इतने अधिक सम्मोहित हो गए थे और इतने मधुर व सुरीले रूप में अपने हृदय की धड़कनों को प्रतिनिनादित सुनकर उन्माद का अनुभव करते थे। इस प्रकार जो केवल एक सांसारिक काव्य था, वह चैतन्यदेव के भक्ति-सम्प्रदाय के भक्ति-गीतों के रूप मे बदल गया। स्त्रैण सौंदर्य और अनुभूतियों के गायक विद्यापति वैष्णव महाजन माने जाने लगे। इसीलिए केवल विद्यापति के प्रेम-गीत ही बंगाल मे प्रवेश पा सके तथा इन गीतों को पवित्र साहित्य मानने वाले चैतन्य-सम्प्रदाय के साथ पूरे आर्यावर्त में फैल गए।

इसलिए कवि के रूप मे विद्यापति एक द्रष्टा थे और नारी-सौन्दर्य तथा नारी-भावनाओं के परदे मे से उन्होंने मनुष्य के यौन-जीवन के रहस्यों को देखा।

९

किंतु विद्यापति केवल एक द्रष्टा नही थे, वे एक कुशल कलाकार थे और उन्होंने ऐसी कविताओं का सृजन किया जो युग-युगो तक सौन्दर्य की वस्तु और आनंद का स्रोत सिद्ध हुई है।

विद्यापति की कलाकारी के दो पहलू हैं जो विशेषतः उल्लेखनीय हैं। विद्यापति के सभी गीतों में बोलचाल की भाषा के प्रयोग के विषय में जो मैं कह चुका हूँ उसे मैं नहीं दोहराऊंगा कि किस प्रकार उन्होंने मिथिला के सामान्य स्त्री-पुरुषों के लिए उस काव्यानंद को सुलभ करा दिया जो केवल संस्कृतकाव्य प्रदान करता था और किस प्रकार इस भाषा का प्रयोग करके उन्होंने जाति या लिंग, सपत्ति या विद्वत्ता की अपेक्षा किए बिना इस प्रदेश में रहने वाले लोगों को राष्ट्रीय स्तर पर एकता के बंधन में बाँध दिया।

विद्यापति की काव्यकला की सबसे पहली बात है—संगीत और काव्य का पूर्ण विलय। संगीत वस्तुतः भाषा को सरसता प्रदान करता है और सुरीलेपन के बिना काव्य अपने पूर्ण सौन्दर्य से रहित हो जाता है। किंतु विद्यापति ने कभी भी केवल सगीत के लिए हवाई सुरीलापन नहीं दिया, उनके गीतों की विषयवस्तु उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि सुरीलापन और उन्होंने विचारों को ऐसे रूप में व्यक्त किया है जो विषयवस्तु के साथ पूर्ण सामजस्य रखता है। उनके गीत में चित्रित मनोदशा के साथ-साथ उनके गीत का सुरीलापन हमेशा मेल रखता है।

द्वितीयतः विद्यापति ने भाषा का केवल अर्थ के लिए उपयोग नहीं किया, प्रयोग किए जाने वाले शब्द की ध्वनि के लिए उनके कान बहुत तेज थे और इस-

लिए उनके गीत वास्तव में सौन्दर्य की लयात्मक सृष्टि है। उनकी भाषा में संस्कृत अलंकार-शास्त्र के दो गुण विशेषरूप में मिलते हैं—माधुर्य और प्रसाद। विद्यापति की रचनाओं में माधुर्य केवल पूर्ण लयात्मक पदरचना और शब्दों के चुनाव में नहीं है, वल्कि वे पढने में भी मधुर, सुनने में भी मधुर और समझने में भी मधुर हैं। साथ ही विद्यापति इस प्रकार के मुहावरों का प्रयोग करते हैं जिनका रूढ़िगत विशिष्ट अर्थ हो गया है और जब इन मुहावरों का काव्य में प्रयोग होता है तब वे हृदय को प्रभावित करते हैं और सामान्य अर्थ बतलाने के साथ-साथ मन को उल्लसित कर देते हैं। उदाहरणार्थ, लोकोक्ति में उस भाषा को बोलने वाले लोगों का अवलोकन और अनुभव समाहित रहता है एवं जब इस प्रकार की लोकोक्ति का विद्यापति प्रयोग करते हैं, तब उसके काव्यमय प्रयोग में लोकोक्ति के अभिव्यंजनार्थ को व्यक्त करने वाला पूरा तात्पर्य आ जाता है।

फिर भी माधुर्य शृंगारकाव्य का सामान्य गुण है और मैथिली साहित्य में ऐसे दूसरे कवि भी हैं, उदाहरणार्थ गोविंददास, जो उतने ही मधुर हैं जितने कि विद्यापति। जो बात विद्यापति को अलग करती है वह है उनका सरल, सीधा और स्वाभाविक तरीका जिसमें वे तत्कालीन सामान्य स्त्री-पुरुषों की बोली के द्वारा अपने विचार व्यक्त करते हैं। यह वास्तव में उनकी प्रतिभा ही थी कि उन्होंने उस बोली का उपयोग किया और उसमें वह अभिव्यक्ति भर दी जो उस क्षेत्र की तत्कालीन भाषाओं में दुर्लभ थी। यह उनके काव्य की इतनी विशिष्ट बात है कि इसे विद्यापति की कृतियों की प्रामाणिकता का दिग्दर्शक माना जा सकता है। यह केवल उनके मैथिली गीतों के लिए ही नहीं, बल्कि उनकी सभी काव्यकृतियों के लिए, चाहे वे संस्कृत में हों या अवहट्ठ में, सही है एवं यही कारण है कि कीर्तिलता अथवा कीर्तिपताका की दुरूहताएं इस बात का संदेह उत्पन्न करती हैं कि क्या वे विद्यापति की रचनाएं हैं अथवा क्या उन्हें जिस प्रकार विद्यापति ने लिखा था, उसी प्रकार वे उपलब्ध हैं?

विद्यापति के काव्य के प्रसादगुण की सबसे महत्त्वपूर्ण बात उनकी अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता है। परिणाम के लिए विशेष श्रम किये बिना विद्यापति अपने हृदय से लिखते थे तथा उनके काव्य का प्रभाव उनके विचारों और अनुभूतियों की चरम प्रामाणिकता में है। यह उनके वर्णनों के तरीके के विषय में भी सही है। विद्यापति ने अपने भाव संस्कृत शृंगारकाव्य के विशाल कोष से ग्रहण किए हैं, किंतु उन्होंने जब उन्हें पुनर्निर्मित किया, तब वे उनके हृदय के अंतःस्फूर्त उद्गार थे। उनका प्रकृति-चित्रण इस बात को प्रमुखतापूर्वक बतलाता है। उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म अवलोकन किया और दूसरे कवियों के द्वारा किए गए वर्णनों को आंख मूंद कर नहीं माना। वसन्त और वर्षा का विद्यापति ने उतना [illegible] वर्णन किया है जितना शायद ही किसी दूसरे ने किया हो संस्कृत कवियों ने और उनके

अनुयायियों ने मानवीय भावनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में ही प्रायः प्रकृति का चित्रण किया है और विद्यापति ने उनका अनुसरण किया है। इस प्रकार हमें प्रेमियों के मिलन और विरह के संदर्भ में वर्षा-ऋतु के सुंदर वर्णन मिलते हैं। किंतु विद्यापति ने वसंतकाल का वर्णन व्यक्तिशः किया है, केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं। किंतु चाहे वसन्त हो चाहे वर्षा, विद्यापति के वर्णन परंपरागत नहीं बल्कि वास्तविक हैं क्योंकि वे स्वाभाविक और अवलोकनाश्रित हैं। इसलिए वे सीधे हृदय पर प्रभाव डालते है और प्रमुख भावों को उद्दीप्त करने का काम अच्छी तरह करते हैं। उनका वर्णज्ञान अत्यंत सूक्ष्म था और उनके द्वारा चित्रित वर्णचित्र अत्यधिक प्रभावशील, सजीव व विरोधाभासात्मक रूप से अतीव मनोरम है। उनके बिम्ब ठोस और स्पष्ट है, जो कुछ भी सुंदर था उसका उन्होंने सूक्ष्म अवलोकन किया और उसे इतनी स्वाभाविकता से व्यक्त किया कि पाठक को उसमें वैसे ही आनंद का अनुभव होता है जैसे कि कवि को।

किंतु उनके सौन्दर्य-बोध की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने केवल उसका ही अवलोकन नहीं किया जो बाह्य चक्षु को सुंदर लगता था, अपितु उसका भी जो आंतरिक विचारों और भावों की दृष्टि से भी सुंदर था (स्त्रियों के मस्तिष्क या हृदय के यथावत्, वास्तविक और अंतर्भेदी अवलोकन के कारण)।

"किसी भी बात को चमत्कारी विधि" से बतलाने वाले अलंकारों के प्रयोग की अपेक्षा और कुछ भी विद्यापति की अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता को स्पष्टतः उदाहृत नहीं करता। उनका मूल है कवि की कल्पनामयी उर्वरता। उनके दो कार्य हैं—प्रकाश में लाना और सजावट के द्वारा शोभा बढ़ाना। विद्यापति अपने चित्रों की स्पष्टता में सर्वोत्कृष्ट है तथा उनकी क्षिप्र बुद्धि और कल्पना की दक्षता के कारण, उनका काव्य भव्य चित्रवत् है। विद्यापति एक द्रष्टा हैं क्योंकि वे जहां भी उपलब्ध हो, वहीं सौन्दर्य का दर्शन करते हैं। वे यथार्थ में कवि हैं क्योंकि वे उस सौन्दर्य का इतना स्पष्ट चित्रण करते हैं कि कोई भी उसका दर्शन कर सकता है। उनके बिंबों का क्षेत्र अत्यंत विशाल है। यदि हम विद्यापति के बिंब-प्रयोग की तुलना एक दूसरे प्रमुख मैथिल-कवि गोविंददास के बिंब-प्रयोग के साथ करें, तो हम पायेंगे कि गोविंददास का रूपक-प्रयोग[1] अत्युत्तम है और जब वे एक पदार्थ का दूसरे पर आरोप करते हैं तब उसमें इतनी पूर्णता रहती है कि एक के सारे विशिष्ट गुण दूसरे पर आरोपित हो जाते हैं। एक ही चित्र पर ध्यान केंद्रित करने की उनमें अद्भुत क्षमता है। किंतु विद्यापति केवल एक ही चित्र से संतुष्ट

---

१. शृंगारभंजन गीतावली, सं०—डॉ० अमरनाथ झा, दरभंगा, भाग १, क्र० ५, ६, ११, १२, ४२, ४४, ४५ इ०।

नहीं होते, वल्कि एक ही गीत में वे अनेक चित्र एक के बाद एक इतनी जल्दी-जल्दी प्रस्तुत करते हैं कि सारा गीत चित्रमय हो जाता है—सर्वसुंदर। अतः विद्यापति का उत्प्रेक्षा-प्रयोग[1] अति-उत्कृष्ट है। इसी प्रकार विद्यापति का अप्रस्तुतप्रशंसा[2] का प्रयोग भी अत्युत्तम है। किंतु अलंकार चाहे जो हों, उनके बिंब हमेशा ठोस, सुदर्शनीय और सुंदर होते हैं क्योंकि वे स्वाभाविक, सूक्ष्मद्रष्ट और प्रामाणिक रूप से व्यक्त है।

यदि हम वस्तुगत भेद की दृष्टि मे काव्य की स्पष्ट परिभाषा करने की कोशिश करे, तो हमारी परिभाषा अलकारबोध के चारों ओर घूमेगी (अलंकार शब्द का प्रयोग उसके विस्तृततम अर्थ में लिए जाने पर)। अलंकार काव्य की सुंदरता है, रूप की सुंदरता है। महान् कवि की रचना में अलकार वे अनिवार्य अवतार है जिनमे विभिन्न भाव रूप धारण करते है। किंतु रूप के महत्त्व को एक तरफ रख-कर, हमें आलकारिता को ही काव्य नहीं समझना चाहिए। अलंकार की वेदी पर काव्य का वलिदान सभव है। 'औचित्य', सामंजस्य, समानुपात, ऐसी चीज है जो काव्य-सौन्दर्य का चरम बिंदु है। "इस औचित्य के संदर्भ की पृष्ठभूमि काव्य की आत्मा रस है जिससे सभी का औचित्य नापा जाता है।"[3] जव आत्मा नहीं रहती तव शरीर शव मात्र रहता है और शव के ऊपर अलंकारों का क्या उपयोग? कवि अलंकार की सहायता तभी ले सकता है, जब वह प्रमुख भाव या रस के अनुकूल उसका प्रयोग करे। शैली के ऊपर लिखे गए अपने निबंध में वाल्टर पेटर 'ग्राह्य अलंकार' के विषय में कहते हैं कि वह अधिकांशतः 'रचनात्मक' या 'आवश्यक' है। एक प्रतिभाशाली कवि उसका इस प्रकार उपयोग करता है कि वह रस की अभिव्यक्ति के साथ मेल खाता है और उचित संदर्भ में एक अचरज वन जाता है। ऐसा लग सकता है कि अलंकार एक कृत्रिम, विशद और बौद्धिक अभ्यास है जिसे वहुमूल्य बनाने के लिए बहुत यत्न करना पड़ता है, किंतु कवि-गुरु के लिए उसे प्रभावशील वनाना वास्तव मे इतना कठिन नहीं है। "उसके लिए तो जैसे-जैसे भावनाएँ वढ़ती हैं वैसे-वैसे अभिव्यक्ति विकसित होती है और अलकार उद्वेलित होते हैं।"[4] सबल परिस्थितियों में अलंकारों के अधिक प्रयोग की ज्यादा प्रवृत्ति होती है। जव कवि प्रतिभाशाली होता है और रसमग्न हो जाता है, तव वह उत्तम अलंकारों का प्रयोग करता है। जहाँ तक विद्यापति का

१ गीत क्र० १२, १४, १६, २०, २१, २३, ३६, ४७, ५२, ५४१, ५७३, ५८४, ५८६ से ५९२ इ०।

२ गीत क्र० ८४, ९६, १४०, ३८४, ४१७, ४४०, ४५२ इ०।

३ राघवन वी०, सम् कांसेप्ट्स आफ अलंकारशास्त्र, अड्यार, १९४२, पृ० ५४।

४ तत्रैव, पृ० ६१।

प्रश्न है, जब रस-प्रवाह बढ़ जाता है तब हम पाते हैं कि अलंकार अनेक स्थलों पर कवि की लेखनी से निरंतर उद्भूत होने लगते हैं। उदाहरणार्थ नारी-सौन्दर्य का वर्णन करने वाले गीत[1] अथवा प्रेमियों का मिलन वर्णन करने वाले गीत[2] इसी प्रकार के है। ये दो विषय ऐसे है जिन्होंने उन्हें काव्य-कल्पना की ऊंचाइयों के लिए प्रेरित किया और उनके भीतर वास्तविक काव्यानंद उद्भूत किया। इसका यह मतलब नही कि विद्यापति वियोग का अनुभूतिपूर्वक वर्णन नहीं कर सकते थे। वस्तुत: वियोग का, विशेष रूप से नायिका के वियोग का, वर्णन करने वाले अनेक गीत हैं[3] और वे इतने अधिक भावनापूर्ण है कि अलंकारों का प्रयोग बहुत कम किया गया है तथा परिस्थिति की उदात्तता अथवा करुणा को एकाकी ही छोड़ दिया गया है जिससे कि वह अपनी भव्यता और सरलता से हमें प्रभावित कर सके।

१०

और अंत मे कुछ ऐसे गीत हैं—अभी तक केवल आधा दर्जन ही उपलब्ध हुए हैं—जिनमें मानव जीवन की निरर्थकता, क्षणभंगुरता और निराशा का वर्णन है। इनमें से पांच[4] माधव या हर को और एक[5] वय को उद्दिष्ट करके लिखा गया है जिसमें जीर्ण वृद्धावस्था की असहायता का अत्यंत वास्तविकता-पूर्वक और अनुभूतिपूर्वक वर्णन किया गया है। इन गीतों में कवि पश्चात्ताप करता है कि वह जीवनभर उन चीजों का ही व्यापार करता रहा जिनसे उसे अंतिम दिनों मे सहायक कोई स्थायी लाभ नहीं मिला, वह सारा जीवन 'मेरा-मेरा' करते हुए बिताता रहा किंतु जब इस संसार से बिदा लेने का समय आया तब कोई भी उसका अपना नहीं हुआ; अपनी युवावस्था में वह दूसरों की पत्नियों और संपत्तियों पर आँख डालता रहा, उसका जीवन तपती रेत पर गिरने वाली पानी की एक बूंद के समान था और जब वह लड़खड़ाते कदमों से मौत की ओर बढ़ रहा था, तब न तो उसके बेटे ने और न ही उसके दोस्त ने कुछ मदद की। उसका आधा जीवन तो सोने में ही चला गया, फिर बाल्यावस्था और

---

१ गीत क्र० १४, १६. १९, ३० से ५५ इ०।

२ गीत क्र० ५४२, ५८४-५८७, ५९० इ०।

३. गीत क्र० ६१८से ८०८।

४ गीत क्र० ४३७, ८३८, ८३९, ८४० व क्र० ४४, गुप्त के देवनागरी संस्करण को हरगौरि पदावली में।

५. मित्र व मजूमदार के संस्करण में गीत क्र० ६१३।

वृद्धावस्था में भी समय बीता, किंतु युवावस्था में वह यौन-प्रेम करने में ही इतना लीन रहा कि उन भगवान् का ध्यान करने के लिए कुछ भी समय नहीं बचा जो अकेले ही परलोक में उसकी देखरेख कर सकते हैं, जीवन की दु:खमय बातों में अपना सारा जीवन बिताकर अब जीवन की संध्या में वह भगवान् के पास जा रहा था जो कि वैसा ही मूर्खतापूर्ण और हास्यास्पद था जैसे कि कोई मजदूर संध्या की वेला मे मालिक के पास काम माँगने जाए जबकि काम का समय समाप्त हो गया हो। वह स्वयं को भगवान् की दया मे इस आशा से समर्पित कर रहा था कि वे उसके गुणों और अवगुणों पर विचार नही करेंगे बल्कि उसे अपनी असीम करुणा के आश्रय में ले लेंगे। विद्यापति ने वृद्धावस्था का अत्यन्त वेदनामय चित्र खींचा है जिससे कि जैसे-जैसे दिन बीतते जाएँ मनुष्य अपने अस्तित्व की वास्तविकता को पहले से ही पहचान ले। इससे जीवन की वास्तविकता के प्रति उसकी आँखें खुल जाएँगी और वह उन भगवान् का ध्यान करने को उन्मुख हो जाएगा जो अकेले ही अंत में उसकी मदद कर सकते हैं।

ये सभी गीत शांतरस को अभिव्यंजित करने वाले हैं जिसका स्थायी भाव निर्वेद अर्थात् वैराग्य है। इनकी अनुभूति बहुत गहन है और वर्णन अत्यन्त प्रामाणिक है। इन गीतों के बारे में काफी बातें की जा चुकी हैं कि वे आत्मप्रकाशक हैं, इस कारण कि अपना जीवन दूसरे की पत्नियों के प्रेम में अथवा दूसरे की सपत्तियों को हड़पने में व्यतीत करने के बाद विद्यापति वृद्धावस्था में पश्चात्ताप कर रहे थे। यह कहा गया है कि शिवसिंह के राजकीय संरक्षण की धूप का सेवन करने के बाद जब उनका संरक्षक रहस्यमय ढंग से अदृश्य हो गया, तब वे निराशा में डूब गए और ये गीत निराशा की उपज हैं।

एक व्यक्ति या कवि के रूप में विद्यापति के विषय में इस प्रकार का दृष्टिकोण उचित नहीं है, ऐसा मुझे लगता है। वे उस परंपरा के अनुयायी हैं, जहाँ कविता को मानव-जीवन के सार्वजनीन तत्त्व की अभिव्यक्ति माना गया है। दूसरे शब्दों में, यह मानवीय जीवन-चरित्र, भावना, कार्य––का इन्द्रिय-गम्य आदर्श-बिम्ब है और यह सब 'मिथ्या' है। जिस प्रकार शृंगार के गीतों में, उसी प्रकार शातरस के गीतों में विद्यापति वस्तुनिष्ठ हैं और कभी भी अपने व्यक्तिगत अनुभवों का आधार नहीं लेते हैं। परकीया के प्रेम के साथ हम जीवन की धार्मिकता का किस प्रकार सामंजस्य कर सकते हैं ? इन गीतों में इस बात को बताने वाला ऐसा कुछ नहीं है कि ये उनके बीते हुए जीवन को बतलाने वाले हैं जबकि हम उनके प्रेम-गीतों को ऐसा नहीं समझते। शांतरस के दृष्टिकोण से ये मानव-जीवन के सामान्यचित्र हैं। विद्यापति के गीत विशिष्ट मनोदशा की सृष्टि हैं। कवि के रूप में वे अपने मनपसंद किसी भी विषय पर गहन अनुभूतिपूर्वक लिख सकते थे और वे अपने हृदय की गहराई से लिखते थे जो लिखे जाने वाले रस से उस समय

लबालब भरा रहता था। इन गीतों में व्यक्त भावनाएँ इस दुनिया के औसत आदमी के सामान्य अनुभवों पर आधारित हैं और यह कहना बहुत अधिक होगा कि ये कवि के विशिष्ट अनुभव हैं जो वृद्धावस्था में पछता रहे हैं। विद्यापति के समान प्रतिभा वाला कवि मनुष्य की इन सामान्य दुर्बलताओं को देख और परख सकता था, जिससे कि इनका व्यापक प्रभाव पड़े। पश्चात्ताप की भावना, ग्लानि, जीवन की नि:सारता—ये सब शान्तरस में अंतर्निहित हैं। अतः उस परंपरा को दृष्टिकोण में रखते हुए, जिसका विद्यापति ने निःसंदिग्ध रूप से अपने काव्य में अनुसरण किया था तथा कवि के जीवन के ज्ञात तत्त्वों के आधार पर मैं यह विश्वास नहीं करता कि इन गीतों में विद्यापति आत्मनिष्ठ या भावुक हैं, जबकि अपने शृंगार-गीतों में वे तटस्थ या वस्तुनिष्ठ हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन गीतों में शान्तरस का उतना ही परिपूर्ण चित्रण है, जितना कि प्रेम-गीतों में शृंगार का। विद्यापति ने मानवजीवन की निःसारता और क्षुद्रता का समान रूप से दर्शन एवं गहन अनुभव किया था। इन गीतों का आत्मावमानन उसी प्रकार कवि का वैयक्तिक नहीं है, जिस प्रकार नायिका के लिए नायक का प्रेमावेग। विशिष्ट के ज़रिए सामान्य का चित्रण काव्य का उच्चतम लक्ष्य रहा है और विद्यापति उसे श्रेष्ठतया प्राप्त कर सके—चाहे वह यौन-प्रेम रहा हो, चाहे अध्यात्म प्रेम, चाहे वह जीवन का आनंद हो, चाहे जीवन की निःसारता, चंचलता, क्षुद्रता और निराशा के साथ-साथ आत्मावमानन।

११

संस्कृत-काव्य के समग्र सौंदर्य से संपृक्त मधुर, सुरीले गीतों के रचयिता के रूप में विद्यापति की कीर्ति आश्चर्यजनक रूप से यत्रतत्र सर्वत्र फैल गयी। जिसने भी इन गीतों को सुना वह इनके सुरीलेपन से मोहित हो गया और इनमें व्यक्त भावनाएँ इतनी सर्वसाधारण थीं कि वे सौंदर्यानुभूतिजनित आनंद से अपरिचित सामान्य स्त्री-पुरुषों को भी उसकी अनुभूति प्रदान कर सकीं। ऐसे समय में जब कि संस्कृत ही सुसंस्कृत लोगों की भाषा थी और उस मिथिलाभूमि में जहाँ संस्कृत के अलावा अन्य किसी भाषा में लिखना पवित्रतापहरण के समान था, उनमें उस प्रदेश में लोगों के द्वारा वस्तुतः बोली जानेवाली भाषा में लिखने का साहस व आत्मविश्वास था। उस समय के पुराणपंथी पंडितों के द्वारा विद्यापति का लोकभाषा में लिखने के कारण तिरस्कार किया गया किन्तु जब उन्होंने देखा कि इस नवीन काव्य ने विद्यापति को अद्वितीय लोकप्रियता और अभूतपूर्व कीर्ति प्रदान की है, तब 'उदात्त मस्तिष्क की अंतिम दुर्बलता' ने उन्हें विद्यापति के कदमों का अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया। विद्यापति के नमूने पर गीतों

की रचना करना मिथिला के प्रतिभाशाली पंडितों के लिए भी एक लोकाचार बन गया। यह सच है कि वे विद्यापति का अनुकरण करने से अधिक आगे नही बढ पाए, किन्तु यह प्रक्रिया अखडित रूप से आगे बढ़ती रही और विद्यापति के द्वारा स्थापित परंपरा व नमूनों पर मैथिली साहित्य निर्मित हुआ।

मिथिला से बाहर मैथिली साहित्य नेपाल मे लगभग तीन शताब्दियों तक विद्यापति से प्रभावित रहते हुए आगे बढता रहा। मिथिला के कर्णाट राजाओं से अपने वंश की उत्पत्ति मानने वाले भटगाँव और काठमांडू के मल्ल राजाओं ने मैथिली साहित्य को संरक्षण प्रदान किया तथा ओइनवरो के पतन के उपरात की मिथिला की राजनीतिक अवस्था ने मैथिली बिद्वानों और कवियों को पडोसी नेपाल के मल्ल राजाओं से संरक्षण मांगने के लिए मजबूर किया। विद्यापति का अनुकरण करके उन्होंने एक विशाल साहित्य का निर्माण किया, जिसमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शुद्ध मैथिली मे लिखे हुए अनेक नाटक हैं, जो वहाँ नियमित रूप से खेले जाते थे और किसी भी आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखे गए प्राचीनतम नाटक हैं। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक, जबकि मल्ल शासन को हटाया गया था, मैथिली नेपाल दरबार की साहित्यिक भाषा बनी रही और विद्यापति प्रेरणा के एक स्रोत। यह खेद की बात है कि इसमे का अधिकांश साहित्य अभी तक प्रकाश में नही आया है और इसलिए उसके बारे में बहुत कम जानकारी है, यद्यपि वह वहाँ के ग्रंथालयों में सुरक्षित है।

किंतु विद्यापति के सबसे सशक्त प्रभाव ने बंगाल के महान् कवियों को प्रेरित किया तथा बंगाली साहित्य का उसकी प्रारंभिक अवस्था मे संवर्धन किया। बंगाल में विद्यापति की कहानी वस्तुतः बहुत रूमानी है। बहुत समय से मिथिला और बंगाल में सांस्कृतिक संबंध थे और उस समय बंगाल के पंडित अपने ज्ञान को परिष्कृत करने के लिए तथा मिथिला के महान् शिक्षकों से उसे आधुनिकतम बनाने के लिए मिथिला में आया करते थे। जब वे घर वापिस लौटते थे, तब उनके ओंठों पर विद्यापति के सुरीले गीत रहा करते थे। चैतन्यदेव और उनके साथियों के लिए ये गीत उन्मादकरूप से प्रभावी सिद्ध हुए, क्योंकि सहजिया सम्प्रदाय से प्रभावित होकर वे यौन तरीके से दिव्य-प्रेम का अनुभव करते थे। विद्यापति के प्रेम-गीत चैतन्य-संप्रदाय के भक्ति-गीत बन गये और विद्यापति 'वैष्णव महाजन' (बंगाली वैष्णवमत के एक महान् प्रवर्तक) माने जाने लगे। कीर्तन इस नवीन संप्रदाय का एक प्रमुख अंग था और अनेक प्रतिभाशाली कवि गीत रचने लगे, पूरी तरह विद्यापति के द्वारा स्थापित नमूने पर। विद्यापति का अनुसरण करते समय वे विद्यापति की भाषा का भी अनुसरण करते थे और चूँकि वे शुद्ध मैथिली नही लिख सकते थे, इसलिए उनकी भाषा मैथिली और बंगाली का एक अद्‌भुत मिश्रण थी, जो आगे चलकर ब्रजबुली कही जाने लगी। चैतन्यदेव

के लिए विद्यापति एक आदर्श बन गये और ब्रजबुली काव्यरचना की भाषा। जैसे-जैसे चैतन्यदेव का नवीन संप्रदाय फैलने लगा, वैसे-वैसे विद्यापति के गीत भी उसके साथ फैलने लगे और उड़ीसा व असम तक तथा सुदूर ब्रजभूमि तक विद्यापति दिव्य प्रेम के एक महान् प्रवर्तक माने जाने लगे एवं गीत उनकी भक्ति-रचनाओं के प्रतिरूप बन गये। बंगाल में भी विद्यापति इस संप्रदाय के एक नेता के रूप में सम्मानित किये जाते रहे और लोग उन्हें बंगाल में उत्पन्न बंगाली समझते रहे तथा सम्मान प्राप्त करने की दृष्टि से कवि अपने गीतों के अंत में उनके नाम का उपयोग करते रहे। कम से कम एक कवि ऐसा था जिसने अपने सभी गीत विद्यापति के नाम से रचे। ब्रजबुली में एक विशाल साहित्य उपलब्ध है जो भारतीय साहित्य का एक गौरव है और जब हम याद करते हैं कि ब्रजबुली मिथिला की वह भाषा है जो वहाँ अजन्मे लोगों के द्वारा प्रयोग में लायी गयी थी और इन सब की प्रेरणा विद्यापति के प्रेम-गीतों ने दी थी, तब हम इस अद्वितीय घटना पर अचरज करते हैं और विद्यापति की प्रतिभा की प्रशंसा करते हैं।

इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि रवीन्द्रनाथ को भी उनके काव्यजीवन की देहरी पर विद्यापति ने प्रभावित किया था और उन्होंने 'भानुसिंहेर पदावली' लिखी जिसमें वे स्वयं को 'अनुरूपित मैथिली' कहते हैं। इस प्रकार विद्यापति का युग मिथिला के समान ही बंगाल में भी १९वीं सदी के अंत तक रहा।

असम में महान् शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव ने विद्यापति के प्रत्यक्ष प्रभाव में आकर मैथिली में लिखा और यद्यपि उनकी रचनाएं मनोरंजक नाटकों के द्वारा वैष्णवमत का प्रवर्तन करने के लिए लिखी गयी थीं, उन्हें प्रेरणा विद्यापति से मिली थी, जिन्होंने लोगों के लिए लिखी गयी रचनाओं में लोगों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा का प्रयोग किया था।

लोगों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा में काव्यानंद को व्यक्त और संचारित करने की प्रतिभा इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई तथा काव्याभिव्यक्ति के रूप में सुरीले गीतों का उपयोग करने की रचनाचातुरी इतनी मोहक सिद्ध हुई कि विद्यापति के द्वारा स्थापित नमूने का हमारे अधिकांश महान् कवियों ने आगे आने वाली शताब्दियों में अनुसरण किया एवं हम दूसरों के मध्य सूरदास, मीरा, तुलसीदास और कबीर की भी उन लोगों में गिनती कर सकते हैं जिन्होंने विद्यापति से प्रेरणा ग्रहण की थी, भले ही परोक्षतः।

१२

विद्यापति मैथिल पुनर्जागरण के दीप्ततम अपत्य थे। वे व्यवसाय से कवि

नहीं थे। उनकी जीवन में विभिन्न रुचियाँ थीं, उनका दृष्टिकोण अत्यंत उदार था, उनके विचार समय से बहुत आगे थे। यह अत्यंत खेद की बात है कि उनके बाद आने वाली शताब्दियों में मिथिला में एक सांस्कृतिक अधःपतन होता चला गया। फलस्वरूप एक व्यक्ति के रूप में विद्यापति को और उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को भुला दिया गया तथा वे एक पुराणकथा, एक उपाख्यान मात्र बन गये। किंतु जब से उन्होंने अपने चारों ओर के लोगों के लिए सुरीले गीत रचे थे, तभी से कवि के रूप में उनका यश कभी क्षीण नहीं हुआ। विद्यापति अभी भी एक कवि के रूप में जीवित हैं और कवि के रूप में जीवित रहेंगे। वे भारतीय साहित्य के एक अत्युत्कृष्ट निर्माता रहे हैं और भारतीय साहित्य के इतिहास में इसी रूप में अमर रहेंगे।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

१. **विद्यापति की पदावली**; सं० एन० गुप्त, देवनागरी संस्करण, इंडियन प्रेस, अलाहाबाद, १९१०। (अन्यथा निर्देश न होने पर इस पुस्तक मे दिये गए सभी गीत क्रमांक इसी संस्करण के है।)
२. वही; सं० डॉ० वी०वी० मजमूदार, देवनागरी संस्करण, पटना।
३. वही; प्र० राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, २ खण्ड।
४. **भाषागीतसंग्रह**; सं० रमानाथ झा, मैथिली विकास कोष, पटना विश्वविद्यालय के लिए; १९७०।
५. **कीर्तिलता ले० विद्यापति**; सं० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी।
६. **कीर्तिलता ले० विद्यापति**; सं० रमानाथ झा, मैथिली विकास कोष, पटना विश्वविद्यालय के लिए; १९७०।
७. **पुरुषपरीक्षा ले० विद्यापति**; सं० रमानाथ झा, मैथिली विकास कोष, पटना विश्वविद्यालय के लिए।
८. **मणिमंजरी-नाटिका ले० विद्यापति**; सं० रमानाथ झा, मैथिली विकास कोष, पटना विश्वविद्यालय के लिए।
९. **गोरक्षविजय-नाटक ले० विद्यापति**; सं० डॉ० जयकांत मिश्र, अलाहाबाद।
१०. **कीर्तिपताका ले० विद्यापति**; सं० डॉ० जयकांत मिश्र, अलाहाबाद।
११. **लिखनावली ले० विद्यापति**; सं० डॉ० इंद्रकांत झा, पटना विश्वविद्यालय, १९६९।
१२. **दानवाक्यावली ले० विद्यापति**; सं० फणि शर्मा, प्र० विक्टोरिया प्रेस, वाराणसी, १८८३।
१३. **गंगावाक्यावली ले० विद्यापति**; सं० डॉ० जे० बी० चौधरी, कांट्रीब्युशन् आफ् वीमेन टु संस्कृत-लिट्रेचर सिरीज़ का खंड ४, कलकत्ता, १९४०।
१४. **दुर्गाभक्तितरंगिणी ले० विद्यापति**; प्र० राज प्रेस, दरभंगा, १९०२।
१५. **विभागसार ले० विद्यापति**; लक्ष्मीकांत झा, पटना उच्च न्यायालय, पटना के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति के पास पाडुलिपि

१६. **भूपरिक्रमा ले० विद्यापति**; संस्कृत महाविद्यालय, कलकत्ता, के ग्रंथालय में पांडुलिपि।

१७. **शैवसर्वस्वसार ले० विद्यापति**; दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के ग्रंथालय मे और काठमांडू, पटना के वीर ग्रथालय मे पाडुलिपि।

१८. **दि टेस्ट आफ मैन**; विद्यापति-कृत पुरुषपरीक्षा का अनुवाद; अनु० सर जी०ए० ग्रियर्सन, आर० ए० एस०, लंदन, १९३५।

१९. **शृंगारभंजन-गीतावली ले० गोविंददास**; सं० डॉ० अमरनाथ झा, दो भाग, साहित्यपत्र, दरभंगा, वि० सं० २०००

२० **पदावली**; सं० बेनीपुरी, पुस्तक भडार, लहेरियासराय।

इस माला की अन्य पुस्तकें

१ लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा : हेम बरुवा
२. बंकिमचन्द्र चटर्जी : सुबोधचन्द्र सेनगुप्त
३. बुद्धदेव बसु : अलोकरंजन दासगुप्त
४. चण्डीदास : सुकुमार सेन
५. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर : हिरण्मय बनर्जी
६. जीवनानन्द दास : चिदानन्द दासगुप्त
७. काजी नजरुल इस्लाम : गोपाल हाल्दार
८. महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर : नारायण चौधुरी
९. माणिक बन्द्योपाध्याय : सरोज मोहन मित्र
१०. प्रमथ चौधुरी : अरुणकुमार मुखोपाध्याय
११. राजा राममोहन राय : सौम्येन्द्रनाथ टैगोर
१२. ताराशंकर बन्द्योपाध्याय : महाश्वेता देवी
१३. सरोजिनी नायडू : पद्मिनी सेनगुप्त
१४. तरु दत्त : पद्मिनी सेनगुप्त
१५. गोवर्धनराम : रमणलाल जोशी
१६. मेघाणी : वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी
१७. नानालाल : उमेदभाई मणियार
१८. नर्मदाशंकर : गुलाबदास ब्रोकर
१९. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : मदन गोपाल
२०. जयशंकर प्रसाद : रमेशचन्द्र शाह
२१. प्रेमचन्द : प्रकाशचन्द्र गुप्त
२२. राहुल सांकृत्यायन : प्रभाकर माचवे
२३. रैदास : धर्मपाल मैनी
२४ श्यामसुन्दरदास : सुधाकर पाण्डेय
२५. बि० एम० श्रीकंठय्य : ए० एन० मूर्तिराव
२६. विद्यापति : रमानाथ झा
२७. कुमारन् आशान : के० एम० जॉर्ज
२८. ज्ञानदेव : पुरुषोत्तम यशवन्त देशपांडे
२९ हरि नारायण आपटे : रामचन्द्र भिकाजी जोशी
३०. केशवसुत : प्रभाकर माचवे
३१. नामदेव : माधव गोपाल देशमुख
३२. नरसिंह चिन्तामण केलकर : रामचन्द्र माधव गोले
३३. श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर : मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे
३४. फ़क़ीरमोहन सेनापति : मायाधर मानसिंह
३५. राधानाथ राय : गोपीनाथ महन्ती
३६. सरलादास : कृष्णचन्द्र पाणिग्राही
३७ सूर्यमल्ल मिश्रण : विष्णुदत्त शर्मा
३८. बाणभट्ट : के० कृष्णमूर्ति
३९ कल्हण : सोमनाथ दर
४० सचल सरमस्त : कल्याण बू० आडवाणी
४१. शाह लतीफ़ : कल्याण बू० आडवाणी
४२. भारती : प्रेमा नन्दकुमार
४३. इलंगो अडिगल : मु० वरदराजन
४४. कम्बन् : एस० महाराजन
४५. पोतन्ना : दिवाकर्ल वेंकटावधानी

साहित्य अकादेमी राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था है, जिसकी स्थापना भारत सरकार ने सन् १९५४ में की थी। यह एक स्वायत्त संस्था है, जिसकी नीतियाँ अकादेमी की परिषद् द्वारा निर्धारित होती हैं। परिषद् में विभिन्न भारतीय भाषाओं, राज्यों और विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि होते हैं।

साहित्य अकादेमी का प्रमुख उद्देश्य है भारतीय भाषाओं की साहित्यिक गतिविधियों का समन्वयन और उन्नयन करना और अनुवादों के माध्यम से विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध उत्तम साहित्य को समग्र देश के पाठकों तक पहुँचाना। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्य अकादेमी ने एक विस्तृत प्रकाशन-योजना हाथ में ली है। इस योजना के अंतर्गत जो ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं उनकी सूची साहित्य अकादेमी के विक्रय-विभाग से प्राप्त की जा सकती है।